UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186606
UNIVERSAL
LIBRARY

आत्म-विश्वासी बनो !

इतिहास की धारा न हमारे पक्ष में है और न उनके, बल्कि यह तो दृढ-संकल्प और आत्म-विश्वासी वीर पुरुषों के हाथ में है।

प्रे० केनेडी

आत्मविश्वासी बनो !

गन्धर्व

प्रकाशक

एन० डी० सहगल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

प्रकाशक :
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज,
दरीबा कलाँ, दिल्ली ।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण : १९६२

मूल्य : तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक :
हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, दिल्ली ।

देश के युवक समुदाए को,
जिसके विश्वास, निष्ठा और
सहयोग पर भारत का
भविष्य निर्भर है।

विषय-सूची

		पृष्ठ
	प्राक्कथन	९
१.	वह शक्ति	११
२.	अपनी वास्तविकता को पहचानिए !	४०
३.	आप की मनोकामना क्या है ?	४९
४.	भय पर विजय	६२
५.	सदैव आशान्वित रहिए	७४
६.	विश्वास का पुनर्निर्माण	८५
७.	निर्णय-शक्ति	९७
८.	आज में रहिए	१०७
९.	प्रोत्साहन	१२०
१०.	भय और आतंक	१३८
११.	स्वभाव में परिवर्तन	१४८
१२.	सोचिए और आत्मविश्वासी बनिए	१५८
१३.	जीवन का संगठन	१७७
१४.	अन्तिम शब्द	१८९

प्राक्कथन

आत्मविश्वास महान शक्ति है। अपने पर अटल विश्वास वह दैवी बल है, जो पहाड़ों को भी पथ देने पर बाध्य कर देता है। आधुनिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कथन है कि आत्मविश्वास का अवलम्बन लेकर अलौकिक पराक्रम का परिचय दिया जा सकता है और दुःसाध्य कार्यों को भी साध्य बनाया जा सकता है। जीवन में सफलता के लिए तो आत्मविश्वास महामंत्र का स्थान रखता है।

प्रस्तुत पुस्तक में उसी शक्ति की महिमा बतलाई गई है, और उन सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें यदि अपना मार्ग-दर्शक बनाया जाए, तो कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही दीन, हीन और दरिद्र क्यों न हो, आत्मविश्वासी बन सकता है, और हारे हुए विश्वास को भी पुनर्जीवित कर सकता है।

इस विशुद्ध वैज्ञानिक और व्यवहारिक विवेचन को मैंने अतीत और वर्तमान काल के महापुरुषों और अन्य सफल व्यक्तियों की जीवन सम्बंधी घटनाओं के उल्लेख तथा अगणित बाह्य उदाहरणों के अतिरिक्त स्वयं अपने देश और समाज की नित्य गतिविधियों के विवरण से सरलबोध और रोचक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। सामाजिक उदाहरण भी उसी प्रकार सत्य पर आधारित हैं, जिस तरह कि राजनीतिक क्षेत्र और बाह्य दुनिया की ऐतिहासिक घटनाएँ। परन्तु उनका उल्लेख करते समय

सम्बद्ध व्यक्तियों के नाम न 'लेकर एक सज्जन को जानता हूँ' अथवा 'एक मित्र हैं' आदि वाक्यों का सहारा लिया गया है। कारण हमारे समाज में अभी तक अपने को प्रकट करने में संकोच अनुभव किया जाता है, और बहुधा लोग अपनी अनुभूतियों में दूसरों को भागीदार बनाना पसन्द नहीं करते।

कुछ भी हो, मैंने पुस्तक को रोचक, सरल और उपयोगी बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी, और इस प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय आप पाठकों पर छोड़ता हूँ। इतनी बात अवश्य पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि इस पुस्तक में प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक समस्याओं में ऐसी कोई भी जटिलता नहीं है, जो साधारण साक्षर व्यक्तियों की समझ से बाहर हो। इसलिए यह पुस्तक गूढ़ मनोविज्ञान की न हो कर व्यवहारिक जीवन से सम्बंधित साधारण जानकारी की पुस्तक है, जिसका अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए नितांत रोचक, ज्ञानवर्द्धक और लाभदायक सिद्ध होगा।

भारत एक जनतंत्रीय राष्ट्र है, और जनतंत्र की रक्षा और विकास के लिए व्यक्तिगत सुधार और उन्नति परमावश्यक हैं। सच तो यह है, कि जनतंत्र का आधार ही व्यक्ति के उत्कर्ष पर है। यदि व्यक्ति आगे बढ़ता है, तो जनतंत्र का कुछ अर्थ भी है, अन्यथा नहीं। इस लिए एक लेखक के नाते यह मेरी प्रबल इच्छा है कि स्वतंत्र भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी वास्तविकता से परिचित हो, तथा अपने बाहुबल पर विश्वास करते हुए स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने का उद्योग करे। इस पुस्तक के अध्ययन से यदि एक भी भारतीय अपने पर भरोसा करके अपने वर्तमान और भविष्य को उज्जवल बनाने पर कटिबद्ध हो जाए, तो मैं समझूंगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया।

—गंधर्व

वह शक्ति जो पहाड़ों को उखाड़ फेंकती है !

एक शक्ति है, जो पहाड़ों को उखाड़ फेंकती है। उसका नाम है आत्मविश्वास। अपने पर पूर्ण विश्वास वह महामंत्र है, जिस की सहायता से अजेय दुर्ग जीते जा सकते हैं, दुर्गम जंगलों और मरुभूमियों को पार किया जा सकता है, और दुर्लभ गड़े धन का पता लगाया जा सकता है।

जो मनुष्य जीवन क्षेत्र में इस विश्वास के साथ प्रवेश करता है कि सफलता उसकी है, और विजय-वैभव उसका जन्मसिद्ध अधिकार है, वह सफल हो कर ही रहता है। कोई कठिनाई, कोई विषमता उसके मार्ग में बाधक नहीं हो सकती। आत्म-विश्वास के बल-बूते पर वह हर मुश्किल पर काबू पाता है, और अपने अभीष्ठ लक्ष्य पर पहुँच कर ही दम लेता है। उसके सब स्वप्न—सुहावने स्वप्न—यथार्थ में परिणत हो कर ही रहते हैं।

"मैं इंगलैंड का प्रधानमंत्री बनना चाहता हूँ" लार्ड मलबर्न के पूछने पर इस महत्वाकांक्षा की अभिव्यक्ति जिस नवयुवक ने की, उसका जन्म एक मध्यम वर्गीय यहूदी परिवार में हुआ था। वह किसी उच्च विश्वविद्यालय से पदवी-प्राप्त नहीं था। उसके सहपाठी उसे केवल इस लिए घृणा की दृष्टि से देखते थे कि वह उनके निकट विदेशी और यहूदी था।

जब वह जीवन क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ, तो पहले ही पग पर उसने ठोकर खाई। वह व्यापार में असफल होकर देनदार हो गया। उसने राजनीति में स्थान बनाना चाहा, तो पग-पग पर उसका विरोध किया गया। वह पहली बार संसत्सदस्य बनने में केवल इस लिए असफल रहा कि डेढ़ सौ वर्ष पूर्व के इंगलैंड में किसी यहूदी को इस सम्मान का पात्र नहीं समझा जाता था। परन्तु इन विफलताओं से उसके दृढ़ कदम नहीं डगमगाए। वह पूर्ववत इंगलैंड का प्रधान मंत्री बनने का स्वप्न देखता रहा।

लार्ड मल्वर्न ने उसे समझाया कि वह अपने इन अपरिपक्व विचारों का परित्याग कर दे। परन्तु वह न तो अपने स्वप्न को अविचार समझता था और न उसे त्यागने को ही तैयार हुआ। उसे अपने पर असीम विश्वासा था। वह समझता था कि इंगलैंड का गौरव और उसका प्रधानमंत्री पद पर आसीन होना—इन दोनों बातों में अटूट सम्बन्ध है। इस लिए वह संघर्ष के मार्ग से विमुख नहीं हुआ। और अंततोगत्वा, घोर विरोध के बावजूद, वह संसत्सदस्य बनने में सफल हो ही गया। परन्तु विरोधीगण उसे नीचा दिखाने की कुचेष्टाओं में संलग्न रहे। जब वह पहली बार संसद में बोलने के लिए खड़ा हुआ, तो उसके भाषण में बार-बार विघ्न डाला गया। उसे विरक्त करने के लिए उस पर व्यंग्य-बाण चलाए गए। आखिर उसे विवश होकर मौन होना पड़ा। परन्तु फिर भी उसने साहस नहीं हारा, पराजय स्वीकार नहीं की। उसने विपक्षियों को सम्बोधित कर कहा—"अब तो मैं बैठ जाता हूँ। परन्तु वह समय आएगा जब आप मेरा भाषण सुनने पर बाध्य होंगे।" और इतिहास साक्षी है कि वह समय आकर रहा। वही विदेशी और 'लुटेरा यहूदी', इंगलैंड के सामंतों और सर्वसाधारण को यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि वह सच्चा देशभक्त है, और प्रधानमंत्री-पद का भारी बोझ

उठाने के योग्य उससे बढ़ कर और कोई राजनीतिज्ञ नहीं है। उस आत्मविश्वासी राजपुरुष का नाम था बेंजमन् डिज्राइली।

डिज्राइली इंगलैंड का प्रधान मंत्री बन कर रहा। और उसे विदेशी और लुटेरा कह कर अपमानित करने वाली अंग्रेज जाति उस का नेतृत्व स्वीकार करने पर बाध्य हुई। यह सब क्यों हुआ ? केवल इस लिए कि डिज्राइली आत्मविश्वासी था। उस के जीवन में निराशा के क्षण भी आए। उसे कई बार पराजय का मुँह भी देखना पड़ा। उसके विरोधियों ने उसके विरुद्ध जातीय पक्षांधता का अस्त्र भी प्रयुक्त किया। परन्तु बेंजमन् ने इन कठिनाइयों को लेशमात्र भी महत्व न दिया।

वह हताश न हुआ, बल्कि हर असफलता पर वह नई उमंग, नए उत्साह और नए संकल्प के साथ सफलता-लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयास में जुटा रहा। उसे अपने बाहुबल पर भरोसा था। उस का अटल विश्वास था कि स्रष्टा ने उसे इंगलैंड् का प्रधान मंत्री पद ग्रहण करने के लिए ही संसार में भेजा है। इस आत्मविश्वास ने सदैव उसका साथ दिया, उसका साहस बढ़ाया और उसके कर्मोत्साह और सहनशीलता की वृद्धि की। इस लिए वह अपने जीवन लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हुआ।

आप भी अपने गन्तव्य पर पहुँच सकते हैं। आपका स्वप्न भी वास्तव का रूप धारण कर सकता है। आप भी महानता, प्रसिद्धि और धन-वैभव प्राप्त कर सकते हैं। बशर्ते कि बेंजमन् की तरह आपको भी अपने पर पूर्ण विश्वास हो, और आप भी स्वयं को महत्ता का अधिकारी समझते हों। किसी निर्धन कृषक के परिवार में जन्म लेने के बावजूद आपको देश का राष्ट्रपति अथवा प्रधान मंत्री बनने की उत्कंठा ने व्याकुल कर रखा हो, और किसी स्वीकृत विश्वविद्यालय से पदवी-प्राप्त न होने के बावजूद आप केवल व्यक्तिगत अध्ययन से ज्ञान व साहित्य के

जगत में सूर्य सदृश चमकने का संकल्प किए हों। बेंजमन् की तरह आपको भी यकीन हो कि कोई कठिनाई आपको अपने ध्येय तक पहुँचने से रोक नहीं सकती, और यह कि शत्रु भी अंततः आप का नेतृत्व और श्रेष्ठता स्वीकार करने पर बाध्य हो जाएँगे।

वास्तविकता यह है कि आत्मविश्वास मनुष्य की अमूल्य सम्पत्ति है। इस पूंजी को साथ लेकर जो मनुष्य संसार रूपी बाज़ार में अपना स्थान बनाने के लिए निकलता है, उसे कोई विचलित नहीं कर सकता, उसे कोई पराभूत नहीं कर सकता। उसे सफलता के मंदिर में प्रवेश करने से कोई नहीं रोक सकता। वस्तुतः आत्मा में अद्‌भुत शक्ति है। आत्मविश्वास मात्र से जीवन में शक्ति-स्फूर्ति का संचार होता है। आत्मविश्वास के चमत्कार से व्यक्तित्व चमक उठता है और मनुष्य में विलक्षण क्षमता का प्रादुर्भाव होता है। आत्मविश्वासी पुरुष राज-सत्ता प्राप्त करना चाहे, तो स्वर्ण-मुकुट उसके चरणों में भेंट किया जाता है, और देश व राष्ट्र के नेतृत्व की बागडोर उसके हाथ में थमा दी जाती है। यदि वह धनोपलब्धि का अभिलाषी हो, तो मणि-मुक्ता उस पर निछावर किए जाते हैं। और यदि वह ज्ञान-विज्ञान का आराधक हो, तो उसे विश्व के विद्या-परिषद में आसन दिया जाता है। लिंकन्, लेनिन, स्टालिन्, सनयात सेन, मुस्तफ़ा कमाल, हिटलर, मसोलिनी, माओत्सि तुंग, नासिर, टीटो, सुकार्नो, होचीमिन्ह, लार्ड बीवर ब्रुक और रॉक फ़ेलर—इन में से किसी के पास भी न तो धन था और न उत्तम कुल की प्रतिष्ठा ही। ये किसी स्वीकृत विश्व-विद्यालय के सनातक भी नहीं थे। इनमें एक कारीगर का बेटा था, तो दूसरा किसी गरीब किसान या मज़दूर का सपूत। किसी एक की परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं थीं। यदि आप इन

जीवनियों का अध्ययन करें, तो आप पर प्रकट होगा कि आरम्भ में इन में से किसी की भी अवस्था आप से बेहतर नहीं थी। यदि आप किसी किसान या मज़दूर के बेटे हैं, तो इनके माता-पिता के माथे पर भी कुलीनता का तिलक नहीं लगा था। आप उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके, तो इन्हें भी उच्च शिक्षा प्राप्ति की सुविधायें नहीं मिली थीं। आप की तरह इन्हें भी बालावस्था में पाठशाला को तिलाँजली देनी पड़ी थी। परन्तु इन सब बातों के बावजूद वे सफल होकर रहे, क्योंकि उन्हें अपने पर, अपनी योग्यता और संकल्प-शक्ति पर, अटल विश्वास था। वे जानते थे कि वे अपने प्रयत्नों से कठिनाइओं पर काबू पा सकते हैं, अपना मार्ग बना सकते हैं, और अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

वे स्वयं को किसी से हीनतर नहीं समझते थे। वे केवल बातों के ही धनी नहीं थे, बल्कि जिस सिद्धांत, विचार या आदर्श के प्रति उन्हें निष्ठा थी, उसे कार्य रूप में परिणत करने का प्रयास भी वे करते थे। इस लिए वे अपने साथियों से बाज़ी ले गए। फिर आप क्यों इस महान शक्ति स्रोत से काम न लें? आप भी स्वयं को उच्चतम पद का अधिकारी क्यों न समझें, और अपने बाहुबल के चमत्कार पर विश्वास करते हुए कर्म मार्ग पर अग्रसर होकर सर्वोच्च पद क्यों प्राप्त न करें?

आत्मविश्वास और सफलता में कारण कार्य का सम्बंध है। आत्मविश्वास के बिना सफलता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह विश्वास कि मैं कर सकता हूँ, पहाड़ों को पथ देने पर बाध्य कर देता है। और यह निश्चय कि सफलता मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है, दुनिया की कोई शक्ति मुझे उससे वंचित नहीं रख सकती, मानव का उत्थान करता है, उसे गति और कर्मशीलता प्रदान करता है, निभर्य बनाता है, और उसके हृदय में आशा-दीप को सदा प्रज्जवलित रखता है। इस प्रकार उसकी

सफलता की सम्भावनाएं उज्जवल ही नहीं होतीं, बल्कि सफलता अवश्यम्भावी हो जाती है।

आत्मविश्वासी पुरुष जब किसी कार्य को हाथ लगाता अथवा किसी अभियान का प्रारम्भ करता है, तो वह अपने मन व मस्तिष्क को असफलता सम्बंधी मिथ्या धारणाओं का बसेरा नहीं बनाता। वह स्वयं को सदैव विजयी ही देखता है। सफलता और महत्ता के सिवा उसे और किसी भी बात से रुचि नहीं होती।

दिसम्बर, ५० में अमरीका की आठवीं सेना कोरिया के रणक्षेत्र में विपदग्रस्त थी। हिमपात और शीत की अधिकता से सेनानियों का साहस टूट चुका था। वे पीछे हटने की योजनाएं बनाने में संलग्न थे। इसी बीच अमरीकी फ़ौज के नए सेनाधिपति जनरल रिज़वे ब्रिगेड चौकी का निरीक्षण करने के लिए आए। सेनाधिकारियों ने उनका स्वागत करने के पश्चात तुरंत ही वह योजना उनके सामने प्रस्तुत कर दी, जो संगठित रूप से पीछे हटने के निमित्त बनाई गई थी। परन्तु जनरल रिज़वे ने उस पर एक दृष्टि डालने तक का कष्ट न किया, और कठोर स्वर में कहा, "मुझे पीछे हटने की योजनाओं से कोई दिलचस्पी नहीं है। हाँ, अगर आगे बढ़ने का कोई नक्शा हो, तो मैं उसपर विचार कर सकता हूँ। मैं आप लोगों की हर तरह सहायता करने को तैयार हूँ। लेकिन इस बात को अच्छी तरह समझ लिजिए कि मुझे केवल एक ही बात से दिलचस्पी है, और वह है शत्रु पर आक्रमण और अग्रयान !" जनरल रिज़वे के इन शब्दों ने और उनके पीछे जो आत्मविश्वास क्रियाशील था, उसने संजीवनी का काम किया। सेनानायकों का उत्साह पुनर्जीवित हो उठा और कुछ ही सप्ताहों में ये समाचार आने लगे कि आठवीं फौज पुनः अग्रयान कर रही है।

जीवन सग्रांम में भी विजय उन्हीं के भाग्य में होती है,जो हथियार

डाल देने की बजाए दो-दो हाथ करने पर तत्पर रहते हैं, जो कठिनाइयों और विपत्तियों से विचलित नहीं होते, जो पराजय की योजनाएँ नहीं बनाते, जिन का आदर्श और लक्ष्य विजय और केवल विजय होता है। जो आंधी और तूफ़ान में भी 'बढ़े चलो' का नारा लगाते हैं, जो विरोधियों का जमघट देख कर पलायन-मार्ग नहीं ढूंढ़ते, जिनका लक्ष्य हर अवस्था में और हर मूल्य पर सफलता है, वह सफल हो कर ही रहते हैं।

जिस मनुष्य को अपनी योग्यता पर भरोसा होता है, वह किसी के अवलम्बन, किसी के पक्ष-समर्थन अथवा किसी के सहयोग की अपेक्षा विरले ही करते हैं। वह अकेला दलों पर भारी होता है। वह प्रतिस्पर्द्धा से नहीं डरता, बल्कि उसे अपने लिए हितकर समझता है। इसलिए नहीं कि उसे कठिनाइयों की सृष्टि करने की सनक सवार रहती है, बल्कि इसलिए कि प्रतियोगिता में उसे अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने का अधिक अवसर मिलता है।

तेल-वाहक जहाज़ों के बहुत बड़े व्यापारी सुक्रात ओइंसस् का नाम विश्व-विख्यात है। उसने मध्यपूर्व से अन्य देशों को तेल पहुँचाने के व्यवसाए पर अधिकार कर लिया, और अमरीका और यूरोप की अनेक कम्पनियों को आर्थिक हानि सहन करने पर बाध्य कर दिया। ओईसस् किसी धनवान व्यापारी के घर में पैदा नहीं हुआ था। समरना के एक अज्ञात और गरीब घराने में उसका जन्म हुआ। उसका बाप समरना की गलियों में देशीय दस्तकारी की चीजें बेचा करता था, और माँ धनिकों के घरों में बर्तन माँझा करती थी। परन्तु ओइंसस् आज करोड़पति है। उसने तेल-वाहक जहाज़ों के व्यापार में इतनी अधिक उन्नति की है कि यूरोप की उन कम्पनियों को भी मैदान छोड़ देना पड़ा है जिन का संरक्षण कुछ बड़े राष्ट्रों की सरकारें करती हैं।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध पत्रकार, लेखक, आलोचक और राजनीतिज्ञ सर ब्युरली बैक्स्टर उन लोगों में से हैं, जो अपने भाग्य के स्वयं निर्माता होते हैं। मि० बैक्स्टर कैनेडा में पैदा हुए थे। प्रथम महायुद्ध के बाद वह लंडन में भाग्यपरीक्षा करना चाहते थे। वह पत्रकार बनने के इच्छुक थे। और उनका मत था कि जिन लोगों को अपने बाहुबल पर विश्वास हो, जो स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त करने पर उद्यत हों, उनके लिए ब्रिटेन के पत्रकारिता-जगत में अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के अवसर दुर्लभ नहीं हैं। अतः मि० बैक्स्टर ने समाचारपत्रों के प्रसिद्ध प्रकाशक लार्ड बीवर ब्रुक से समुद्री तार द्वारा अनुरोध किया कि उन्हें काम करने का मौका दिया जाए। उत्तर में लार्ड बीवर ब्रुक ने लिखा—"तुम अपनी जिम्मेदारी पर आ सकते हो।" निस्संदेह जवाब उत्साह वर्द्धक नहीं था। कैनेडा से अपनी जिम्मेदारी पर लंडन पहुँचना, जब कि नौकरी की ज़मानत भी नहीं दी गई थी, कठिनाइयों और संकटों को आमंत्रित करने के समान था। परन्तु मि० बैक्स्टर को विश्वास था कि वह ऐसी सब मुश्किलों पर काबू पा लेंगे। इस लिए उन्होंने लंडन की यात्रा करने में विलम्ब न किया।

उन्हें पहले पहल एक समाचार पत्र में संवादाता के पद पर काम करने का अवसर दिया गया। परन्तु दस वर्ष बाद वह एक ऐसे दैनिक पत्र के प्रधान सम्पादक बन गए, जिसकी प्रकाशन संख्या बीस लाख से भी अधिक थी। उसके बाद वह संसत्सदस्य भी बने, सर की उपाधी भी उन्होंने प्राप्त की, और देश के प्रमुख राजनीतिज्ञों में उनकी गणना होने लगी। कहा जाता है कि ब्रिटेन के दो प्रधान मंत्री—मि० चैम्बरलेन और मि० एटली—कठिन समय में उनसे परामर्श किया करते थे। मि० चर्चिल भी उनकी मंत्रणा को आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

मि० बैक्स्टर की यह ईर्ष्या-योग्य सफलता उनके आत्म-

विश्वास की देन है। यदि उन्हें अपने आत्मबल और योग्यता पर विश्वास न होता, अर्थात उन्हें यह यक़ीन न होता कि वह लंडन जाकर न केवल नौकरी ही प्राप्त कर सकेंगे, बल्कि मान-प्रतिष्ठा और धन-समृद्धि प्राप्ति में भी सफल होंगे, तो वह शायद ही अपनी जन्मभूमि को छोड़ने पर तैयार होते, और शायद कैनाडा में ही अपने ढब के किसी काम के लिए प्रयत्न करते।

आत्मविश्वास वस्तुतः मनुष्य को दृढ़ता-धैर्य की मूर्ति बना देता है। जिस मनुष्य को अपनी स्थिति और विचारों की सत्यता का विश्वास होता है, और जो समझता है कि वह कठिन काम को भी पूरा कर दिखाने का सामर्थ्य रखता है, वह अपने मंतव्य की सत्यता को सिद्ध करने के लिए बड़े से बड़ा ख़तरा मोल लेने से भी नहीं डरता। उसे न तो मिथ्या धारणाओं के प्रेत भयभीत कर सकते हैं और न शंकाओं के भूत डरा सकते हैं। उसके मार्ग में मुसीबतों के हिमालय खड़े हों, तो भी वह कदम पीछे नहीं हटाता, बल्कि पहाड़ों को भी पथ देने पर बाध्य कर देता है। जब वह किसी अज्ञात भूखंड का पता लगाने पर कटिबद्ध होता है, तो वह महासागर के असीम विस्तार को देख कर संदेह और शंका के सागर में डुब्कियाँ नहीं खाता, बल्कि कोलम्बस की तरह प्रति दिन यही सोचता है—आज भी लक्ष्य की ओर बढ़े। हार और असफलता की तो वह कल्पना भी नहीं करता। और यदि किसी समय उसे असफलता का मुँह देखना पड़ जाए, तो भी वह साहस नहीं हारता, निराश नहीं होता, निष्क्रिय हो कर बैठ जाने पर तैयार नहीं होता। वह उस समय तक संघर्ष जारी रखता है, जब तक कि अभीष्ट वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेता।

आज हम जिन आविष्कारों और ईजादों से लाभान्वित हो रहे हैं, वे सब उन वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की देन हैं,

जिन्हें अपने पर और अपने आविष्कारों की सत्यता पर अटल विश्वास था। उन्हें अपनी सोच की सचाई का यक़ीन न होता, तो वे उसे कार्य रूप में सिद्ध करने की सिरदर्दि कभी मोल न लेते। और यदि वे अनुसंधान के कठिन मार्ग पर चलते हुए अविश्वास के भ्रमजाल में उलझ जाते, तो शायद ही अपने लक्ष्य तक पहुँच पाते, और शायद ही मनुष्य मात्र के हितचिंतक और देश व जाति के उपकारक कहलाने का सौभाग्य प्राप्त करते।

वैज्ञानिक, आविष्कारक और पर्यटक कष्टों की ज्वाला में क्यों कूदते हैं ? प्राण जैसी प्रिय वस्तु को जोखिम में क्यों डालते हैं ? भोग-विलास के जीवन पर दुःख और विपत्ति के जीने को प्राथमिकता क्यों देते हैं ? केवल इसलिए कि उन्हें अपने अपूर्व विचार अथवा धारणा की सत्यता पर पूर्ण विश्वास होता है। और वे उसकी सचाई को साबित किए बिना चैन से नहीं बैठ सकते।

प्रथम महायुद्ध के समय ब्रिटिश वायुसेना के अधिकारी यह देखकर अत्यन्त चिंतित हो उठे कि बहुधा विमान उड़ान करते-करते सहसा चक्कर खाकर धरती की ओर गिरना शुरु कर देते हैं, और जब वैज्ञानिक उन पर काबू पाने की चेष्टा करते, तो उसका परिणाम प्रायः विनाश के रूप में निकलता। आखिर सरकार ने इस चिंताजनक परिस्थिति का हल निकालने के लिए तरुण वैज्ञानिक फ्रैड्रिकलिंडेमन् को नियुक्त किया। इसी वैज्ञानिक को बाद में उसकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप लार्ड चिरोल की उपाधी दी गई।

लिंडेमन् ने गहन चिंतन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि जिस समय वायुयान चक्कर खा कर नीचे की ओर गिरना शुरु करे, तो वैज्ञानिक को स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार क्रिया नहीं करनी चाहिए। अर्थात यदि विमान का अगला भाग धरती की

ओर हो गया हो, तो वैज्ञानिक को उसे ऊपर उठाने में शक्ति व्यय करने की बजाए विमान को पूर्ण वेग से नीचे ले जाने की चेष्टा करनी चाहिए। इससे विमान नीचे गिरने के स्थान पर सीधा सामने की ओर बढ़ना शुरु कर देगा। लिंडेमन ने इस सिद्धांत का आविष्कार तो कर लिया, परन्तु अब उसका व्यावहारिक परीक्षण कैसे किया जाए? बिना परीक्षण विमान चालकों को उसे मान्यता देने पर बाध्य नहीं किया जा सकता था। प्रकट में यह बड़ा ही विचित्र सिद्धांत था। जो विमान पहले ही धरती की ओर गिर रहा हो, उसे और नीचे ले जाने से वह विनाश से कैसे बच सकता है, इस अनूठे सिद्धांत को कौन स्वीकार करता? आखिर मि० लिंडेमन् ने स्वयं विमान चलाने का प्रशिक्षण लेने का प्रस्ताव किया, ताकि अपने सिद्धांत की सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण दे सके। और जब कुछ महीनों के बाद वह विमान चलाना सीख गए, तो उन्होंने अपने अनोखे विचार को कार्यन्वित करने का बीड़ा उठाया।

देखते ही देखते वह विमान को १८ हज़ार फुट की ऊँचाई पर ले गये। फिर तुरंत ही विमान ने चक्कर खाकर नीचे गिरना शुरु कर दिया। तभी मि० लिंडेमन ने उसकी गति और भी तीव्र कर दी। लगा कि बस अब क्षण भर में विमान धरती से टकरा कर नष्ट हो जाएगा। परन्तु लोग यह देख कर चकित रह गए कि विमान ने एकाएक सीधा होकर आगे की ओर उड़ना शुरू कर दिया। इस प्रकार मि० लिंडेमन की सिद्धांत की यथार्थता सिद्ध हो गई। परन्तु उस वीर पुरुष ने विमान को धरती पर उतारने की बजाए फिर एक बार आकाशोन्मुख कर दिया। ऊंचाई पर पहुँच कर विमान ने फिर चक्कर खाया, और लिंडेमन ने पुनः अपनी योजना के अनुसार कार्य कर उसे दूसरी बार भी संकट से बचा लिया। इसके

बाद जब वह विमान को सकुशल धरती पर ले आए, तो मैदान में उपस्थित जनों ने करतल-ध्वनि से उनका स्वागत किया। लोगों ने पूछा कि आपने एक बार सफलता प्राप्त कर लेने के बाद फिर दूसरी बार ख़तरा क्यों मोल लिया, तो लिंडेमन ने उत्तर दिया "मैंने सोचा कि मुमकिन है कोई यह कहे कि पहली बार विमान शायद संयोग से बच निकला, इसलिए परीक्षण को दुहराना आवश्यक था।"

मि० लिंडेमन की तरह अन्य वैज्ञानिक और आविष्कार भी अपनी स्थापना की पुष्टि के लिए प्राणों की बाजी लगाने में संकोच नहीं करते। उनका 'पथदर्शक तारा' उनका आत्मविश्वास होता है। उसी की सहायता से वे आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न करते हैं, और अपनी रचनाओं को पूर्णता के स्तर पर पहुँचाने में सफलता प्राप्त करते हैं।

वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की तरह राजनीतिज्ञ भी अपने देश की स्वतंत्रता और मान-प्रतिष्ठा के लिए संकट के समय केवल इस लिए छाती तान कर खड़े हो जाते हैं कि उन्हें अपने आदर्श के न्यायोचित होने का विश्वास होता है। उन्हें अपनी इस योग्यता पर भरोसा होता है कि इस समय केवल वही हैं, जो देश की नाव को सुरक्षा-तट तक ले जा सकते हैं।

राजनीतिक नेताओं का आत्मविश्वास केवल उन्हीं को अंतिम श्वास तक लड़ने की प्रेरणा नहीं देता, बल्कि समूचे राष्ट्र को आत्मविश्वासी बना कर उसे शत्रु का मुँह मोड़ देने के लिए तत्पर कर देता है। तनिक द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भिक दिनों की कल्पना कीजिए। हिटलर की विजयी सेनाएं सर्वत्र अग्रयान कर रही थीं। जर्मन वायुसेना के विध्वंसक विमान इंग्लैंड का चिन्ह तक मिटा देने के लिए भीषण बम-वर्षा कर रहे थे। ऐसे नाज़ुक समय पर असीम संकल्प शक्ति के मालिक चर्चिल ने

इंगलैंड का नेतृत्व-भार संभाला। उस इंगलैंड का, जो युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था, जिसके पास आवश्यक युद्ध-सामग्री नहीं थी, और न प्रतिरक्षा के लिए प्रर्याप्त साधन ही थे। उस इंगलैंड के कितने ही लोग इतने हतोत्साहित हो चुके थे कि अन्य देशों में जा कर बसने की योजनाएँ बनाने लगे थे।

समय का मर्म जानने वाले चर्चिल ने देश को वर्षों पहले सचेत होने और प्रतिरक्षा-बल की वृद्धि करने की मंत्रणा दी थी। परन्तु उस समय उसकी किसी ने न सुनी, और उसे 'युद्ध-पिपासु' कह कर मौन रहने पर बाध्य कर दिया गया। परन्तु अब जब कि इंगलैंड पर विपत्ति के बादल छा गए, तब उससे देश को इस महान संकट से निकालने का अनुरोध किया गया, मि० चर्चिल को पहले से विश्वास था कि केवल वह ही इंगलैंड को अपमानजनक पराजय से बचा सकते हैं। इस लिए वह तुरंत कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े। वह इस दृढ़-संकल्प के साथ जनता के सामने उपस्थित हुए कि वह अपने गौरवशाली द्वीप की रक्षा करेंगे, चाहे उन्हें इसकी कितना ही भारी मूल्य क्यों न चुकानी पड़े। "हम समुद्रतट पर लड़ेंगे। हवाई अड्डों पर शत्रु से लोहा लेंगे। हम पहाड़ों, मैदानों, खेतों और गलियों में दुश्मन से दो-दो हाथ करेंगे। हम कभी हथियार नहीं डालेंगे, हम कभी हार नहीं मानेंगे।" चर्चिल के इन उत्साहवर्द्धक शब्दों ने ब्रिटिश जाति के मृत प्रायः शरीर में मानों नए जीवन और नई आशा का संचार कर दिया। वे मि० चर्चिल के नेतृत्व में जर्मन शत्रु को मुँह तोड़ जवाब देने के दृढ़ संकल्प के साथ उठ खड़े हुए।

मि० चर्चिल ने अपने 'मनोवैज्ञानिक अभियान' को केवल उत्साहर्वद्धक शब्दों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने देश को एक नया नारा और एक निशान भी प्रदान किया। उनके कहने पर व्ही (V) अर्थात 'विजय' को राष्ट्रीय प्रतीक

बना लिया गया, ताकि जनता के मन व मस्तिष्क पर विजय की छाप पूर्ण रूप से अंकित हो जाए।

"विजय—हर कीमत पर विजय—हर प्रकार की कठिनाइयों और विपत्तियों के बावजूद विजय"—मि० चर्चिल के इस अटल और अजेय विश्वास ने इंगलैंड के हर स्त्री-पुरुष, बाल, वृद्ध, युवा पर जादू सा कर दिया। उसके बाद इंगलैंड की पराजय का प्रश्न ही नहीं उठता था। आखिर वह दिन भी आया जब हिटलर की आसुरी शक्ति को मि० चर्चिल के नैतिक बल के आगे हथियार डालने पड़े।

वर्तमान युग का एक राजनीतिक चमत्कार भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति भी कुछ दिव्य व्यक्तियों के आत्मविश्वास का सुपरिणाम है। इनमें महात्मागांधी का नाम सर्वोपरि है। जिस समय गांधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र में पदार्पण किया, तब भारत के राजनीतिक नेता ब्रिटिश साम्राज्य की वंदना करने को ही अपना परम सौभाग्य समझते थे। गांधीजी के प्रभाव से राष्ट्रीय आन्दोलन ने वास्तविक रूप धारण किया। वह कुछ प्रमुख व्यक्तियों को 'भाषण-प्रतियोगिता' की स्थिति से विकसित होकर सम्पूर्ण देश की बहुसंख्यक जनता का जनतंत्रात्मक स्वातंत्र्य-संग्राम बन गया। परन्तु उस संग्राम के लिये गांधीजी ने देश को जो अस्त्र दिये, वे जितने अनूठे थे, उतने ही भारतीयों जैसी दीर्घकाल से निःशस्त्र चली आ रही जनता के लिये उपयुक्त भी। सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के शांतिपूर्ण हथियारों से ब्रिटेन जैसी प्रचंड शक्ति को भारत छोड़ने पर बाध्य किया जा सकता है, इस बात पर प्रारम्भ में बहुत कम लोगों ने विश्वास किया। परन्तु उस 'लंगोटी वाले बाबा' को अपने सिद्धान्तों और साधनों की शुद्धता और उपयोगिता पर अटल

विश्वास था। उसी के बल पर वह अन्य अनेक लोगों को अपना समर्थक और अनुयायी बनाने में सफल हुए। परिणामतः देश के कोने-कोने में जागृति की लहर दौड़ गई। और अन्ततः १९४७ ई० में ब्रिटिश शासन को विवश होकर भारत पर से अपनी प्रभु-सत्ता हटानी पड़ी, यद्यपि जाते-जाते भी वह भारत पर एक अंतिम प्रहार करता गया, और शतियों से अखंड चले आ रहे इस देश को दो भागों में विभाजित कर 'पाकिस्तान' नाम का एक स्थायी शत्रु भारत की छाती पर बिठा गया।

परन्तु यहाँ देखने की बात केवल यह है कि यह तथाकथित 'पाकिस्तान' भी केवल एक व्यक्ति की सूझ और आत्मबल का ही परिणाम है। व्यक्ति का नाम था मुहम्मद अली जिनाह। "भारत नाम के महाद्वीप में एक नहीं, बल्कि दो राष्ट्र हैं, जिन्हें अलग-अलग स्वतन्त्र देश मिलने चाहिएँ—" जिनाह की इस स्थापना पर भारतीय नेता ही नहीं, बल्कि प्रारम्भ में स्वयं ब्रिटिश सरकार भी चकित रह गई। कांग्रेस के प्रमुख नेता, जिनमें केवल गांधीजी ही अन्त तक अपने वचन पर दृढ़ रहे, देश-विभाजन को गाय के टुकड़े करने के समान बतलाते थे। परन्तु उस 'आत्मविश्वास की मूर्त्ति' जिनाह ने समूचे जगत को सम्बोधित कर कहा कि 'सबसे पहले जो व्यक्ति छतरी लेकर निकला होगा, उस पर लोग हँसे होंगे। परन्तु अब सभी लोग धूप अथवा वर्षा में छतरी लेकर चलते हैं, और देखने वालों को इस पर कुछ भी अचंभा नहीं होता।" उनका आशय यह था कि आज आप पाकिस्तान के अयुक्त और असंगत होने की लाख दलीलें दें, पर यह निश्चित है कि यह 'अद्भुत देश', जिसके दो खंडों के बीच डेढ़ हज़ार मील का परराष्ट्रीय क्षेत्र होगा, और नागरिकों मे धर्म के सिवा और कोई भी बात सामान्य नहीं होगी, अस्तित्व में आएगा अवश्य। कहते हैं कि अकेले जिनाह को छोड़

कर स्वयं मुस्लिम लीग के और किसी भी बड़े नेता को इस योजना के व्यवहार्य होने का विश्वास नहीं था। वे इस मांग को केवल सौदेबाज़ी का एक उपयोगी साधन ही समझते थे। परन्तु आज वही 'अकल्पनीय' देश ठोस यथार्थ के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। और भले ही हम धर्मनिर्पेक्षता के भ्रम में पड़े रहें, पर यह तथ्य है कि अखंडित भारत के मुसलमानों ने एक पृथक राष्ट्र और अभारतीय जाति होने की धारणा को अपने आचार-विचार और व्यवहार से पुष्ट और प्रमाणित कर दिया है। एक व्यक्ति के आत्मविश्वास का इतना व्यापक प्रभाव इतिहास में विरले ही दृष्टिगत होता है।

निःसंदेह वास्तविक महत्ता और जीवन का सुख-आनन्द भी उन्हीं लोगों के लिए है, जो संघर्ष कर सकते हैं। चेष्टा और अध्यवसाय से दासपुत्रों को मंत्री, कृषकों के बेटों को मुकुटधारी राजा, और सेवकों की संतान को राष्ट्रों के भाग्य-निर्माता बनते देखा गया है। अविरत परिश्रम और प्रयत्न से वे लोग भी प्रसिद्धि और अमरता को प्राप्त कर सकते हैं, जो किसी स्वीकृत विश्व-विद्यालय से शिक्षा-सम्पन्न नहीं होते। परन्तु कोई व्यक्ति तब तक संघर्ष के लिए उद्यत नहीं होता, जब तक कि उसे इस बात का विश्वास न हो कि जिस अभियान में वह भाग लेने जा रहा है, उसमें वह विजयी हो सकता है; और जिस महान और कठिन कार्य को पूरा करने का वह संकल्प कर रहा है उसे सम्पन्न करने की योग्यता भी वह रखता है। आप उन महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन करें, जिन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेने और पालितपोषित होने के बावजूद सफलता की देवी के साक्षात दर्शन किए, तो आपको ज्ञात होगा कि वे अपनी मनो-कामना की सिद्धि में केवल इसलिए सफल हुए कि वे आत्म-विश्वासी थे। उन्हें उनके आत्मविश्वास ने ही संघर्ष के लिए

प्रेरित किया और आत्मविश्वास ने ही ऐसे क्षणों में उनका साहस बनाए रखा, जब उनकी सफलता की सम्भावनाएँ मंद पड़ गईं। इसलिए आत्मविश्वास और सफलता को एक ही बात के दो पक्ष मानना ग़लत नहीं है।

एमर्सन कहते हैं कि विजय के भागी केवल वही लोग होते हैं, जिन्हें अपनी विजय का पूर्ण विश्वास होता है। एक मनोविज्ञान-विशेषज्ञ का कथन है कि आत्मविश्वास वह शक्ति है जो असम्भव को सम्भव बना देती है। एक प्रसिद्ध डाक्टर लिखते हैं "आत्मविश्वास से ऐसे घाव भी भर जाते हैं, जो किसी भी मरहम से अच्छे नहीं हो सकते।" इसमें संदेह नहीं कि दुनिया में कुछ लोग केवल इसलिए सफल नहीं होते कि उन्हें अपनी सफलता का विश्वास नहीं होता, और वे अपने बाहुबल पर भरोसा नहीं करते। वे तीक्ष्ण बुद्धि वाले होने पर भी अपनी बौद्धिक शक्तियों से केवल इसलिये काम नहीं ले सकते कि वे अपने को इसका अधिकारी ही नहीं समझते कि अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाकर उन्नति करें। आत्मविश्वास के अभाव से उन्हें अपना भविष्य बनाने का अवसर नहीं मिलता।

आप बड़े-बड़े कारखानों और कार्यालयों में ऐसे व्यक्तियों को मामूली वेतन पर काम करते हुए देख सकते हैं, जो छात्रावस्था में बड़े होशियार और तेज़ माने जाते थे। परन्तु वे नहीं चमक सके और उन्नति के सोपान पर नहीं चढ़ सके, क्योंकि उन्होंने कभी बुद्धिमत्ता से समुचित काम नहीं लिया। वे चायखाने में बैठकर कारखाने की शीघ्रकालिक प्रगति के उत्कृष्ट सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं, परन्तु उन्हें कहिए कि यही सुझाव वे अपने कारखाने के व्यवस्थापक के सामने पेश करें, तो वे झट से उत्तर देंगे—"हमारे व्यवस्थापक के सामने ऐसे सुझाव पेश करना सूरज को चिराग़ दिखाने के समान है"—या वे 'छोटा मुँह बड़ी

बात' की लोकोक्ति का हवाला देकर अपने को सही साबित करने की कोशिश करेंगे। वे स्वयं सूर्य होते हुए भी अपने को दीपक समझते हैं, तो फिर उनकी दरिद्रता और कष्टों का प्रतिकार कैसे हो सकता है ? कुछ आश्चर्य नहीं कि ऐसे लोग तुच्छ वेतन पर सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं।

मेरे एक घनिष्ट मित्र एक राज्य विधान-सभा के सदस्य हैं। वह कुछ दिनों तक संसदीय सचिव भी रह चुके हैं। एक दिन बातों बात में आपने रहस्योद्घाटन किया कि राज्य मंत्री-मंडल के एक प्रमुख सदस्य उनके समर्थन और योगदान से ही मंत्री-पद प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इस पर मैं यह कहे बिना न रह सका कि जब आप इतना प्रभाव और इतनी प्रतिष्ठा रखते हैं कि दूसरों को मंत्री-पद दिला सकते हैं, तो फिर आपने स्वयं ही मंत्री बनने की इच्छा क्यों नहीं की, और संसदीय सचिव बने रहने पर ही संतोष क्यों कर लिया। सुन कर आपने अपनी तुच्छता का विवरण सुनाना शुरू कर दिया। 'मैं और मंत्री-पद ! यह मुँह और मसूर की दाल ! अजी साहब, इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता !' यह था उनके उत्तर का सार। परन्तु अभी इस वार्तालाप को छः मास भी नहीं बीते थे कि एक दिन वह मेरे कुछ कहे बिना ही कहने लगे—"आप ठीक कहते थे। मैं चाहता तो मंत्री बन सकता था। लेकिन मुझे अपनी योग्यता पर भरोसा न था। मुझे ज़रा भी विश्वास होता, तो शायद मैं उस मित्र से कुछ बेहतर ही मंत्री सिद्ध होता, जिसे मंत्री बनवाने के लिए मैंने रात-दिन एक कर दिया। अफ़सोस ! मैंने अपनी योग्यता पर विश्वास न किया। इस चूक पर मैं आजीवन पछताता रहूँगा।" मेरे इस मित्र की तरह अधिकतर लोग केवल इसलिए असफल रहते हैं, और बाद में पश्चाताप करते हैं कि उन्हें अपने पर विश्वास नहीं होता।

थामसग्रे अपनी विख्यात कविता में उन मोतियों के भाग्य पर खेद प्रकट करता है, जो अपनी चमक-दमक दिखाए बिना ही समुद्र के गर्भ में पड़े रहते हैं, और उन फूलों के नसीब पर आँसू बहाता है, जो बिना खिले ही मुरझा जाते हैं। कवि पोप भी ग्रे के स्वर में स्वर मिला कर उन फूलों की दशा पर शोक व्यक्त करता है, जो जंगल में खिलते हैं, अपना सौंदर्य और सुगंधि जंगल को ही अर्पित कर देते हैं। इसी प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति अनेक भारतीय कवियों की रचनाओं में भी मिलती है। 'हसरत उन गुँचों पै है, जो बिन खिले मुरझा गए' उर्दू कविता की एक प्रसिद्ध पंक्ति है।

जीवन में इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है कि मोती अपनी चमक-दमक दिखाये बिना ही लुप्त हो जाएं, और फूल अपनी महक से किसी का मन प्रफुल्लित किए बिना ही धूल में मिल जाएं। परन्तु इनसे भी ज्यादा दुखदायी और दयनीय स्थिति उन लोगों की है, जो सब कुछ करने की क्षमता रखते हुए भी अपने पर विश्वास नहीं करते। इसलिए अपनी योग्यता से न तो स्वयं लाभ उठाते हैं और न मानवता की कुछ सेवा ही करते हैं। ये दीन-हीन और दुःखी लोग, जिनके चेहरे धूल से आवृत हैं, और जिन्हें तन ढाँपन के लिए कपड़े का एक टुकड़ा तक नसीब नहीं; जो वर्षों की दौड़-धूप के बाद भी सुख शांति का मुँह नहीं देख सके; ये लोग सब जन्मसिद्ध क्षूद्र नहीं हैं। इनमें बोसियों दिव्य आत्माएँ भी हैं। परन्तु द्ररिद्रता और दुर्गती इनका पीछा नहीं छोड़ती। कारण वे अपनी वास्तविकता से परिचित नहीं हैं। वे स्वयं को पहचान भी कैसे सकते हैं, जबकि उन्हें अपनी आत्मा पर भरोसा ही नहीं है, जबकि वे अपने बाहुबल से काम लेने के लिए तैयार ही नहीं हैं।

भारत के प्रशंसित खाद्य-मंत्री स्वर्गीय श्री रफ़ीएहमद किद-

वाई, जिन्होंने अन्न-नियंत्रण समाप्त कर गली-गली में अनाज बिकवाया था, एक महान नेता और कुशल प्रशासक ही नहीं, बल्कि कई अन्य दृष्टियों से भी एक असाधारण व्यक्ति थे। उनके देहांत पर पंडित नेहरू ने उन्हें निम्न शब्दों में श्रद्धांजली अर्पित की थी—"श्री किदवाई न तो जन्म से नेता थे, और न नेतृत्व उन पर ठूँसा गया। वह अपनी व्यक्तिगत साधना और संघर्ष से नेता बने" श्री किदवाई के जीवन-वृत्त का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनकी पूँजी उनका आत्मविश्वास था। श्री किदवाई के आत्मविश्वास का इससे बढ़ कर प्रमाण और क्या होगा कि जिन दिनों में पहले-पहल पं० नेहरू ने प्रधान मंत्री-पद के भारी बोझ से अवकाश लेने की इच्छा प्रकट की, और इस पर भारत भर में चिन्ता व्याप्त हो गई, तब श्री किदवाई ने एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुये कहा कि "अगर पं० नेहरू थक गये हैं और आराम करना चाहते हैं तो इस पर परेशान होने की क्या जरूरत है। मैं उनके स्थान पर प्रधान मंत्री-पद संभालने के लिए तैयार हूं।" और श्री किदवाई के इस दावे पर समूचे भारत में किसी एक व्यक्ति ने भी, यहाँ तक कि उनके विरोधियों ने भी, न तो प्रतिवाद कया और न इसे आत्मश्लाधा अथवा असत्य पर ही आधारित बतलाया। इससे स्षष्ट है कि भारत का विचारशील समुदाए उन्हें वस्तुतः इस सम्मान का अधिकारी और इस महान दायित्व-भार को सहन करने के योग्य समझता था। स्पष्ट है कि श्री किदवाई की महत्ता का रहस्य उनके आत्मविश्वास में था। और पं० नेहरू ने उनकी महानता को श्रद्धाजली अर्पित कर वास्तव में आत्म-विश्वास के महत्व को ही स्वीकार किया।

आज के जनतंत्रीय युग में नेतृत्व किसी पर शायद ही कभी ठूँसा जाता हो। साधारणतः सभी नेतागण अपने अविश्रांत

परिश्रम और निरंतर संघर्ष के बाद ही राजनीतिक क्षितिज पर उदित होते हैं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की पुण्य स्मृति भारत-वासियों के हृदय से कभी मिट नहीं सकती। वास्तव में भारत को स्वतन्त्रता दिलाने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है, तो वह नेताजी बोस ही थे। उन्हीं के द्वारा संगठित आज़ाद हिन्द फ़ौज ने भारत की तत्कालीन सशस्त्र वाहिनियों में भी देशभक्ति की भावना को उत्तेजित किया, जिसके फलस्वरूप उनमें ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़े होने की शक्ति का प्रादुभाव हुआ। पहले नौसेना ने, और उसके बाद वायुसेना और स्थल सेना ने भी विदेशी शासकों की भारत-विरोधी आज्ञाओं का पालन करने से इन्कार कर दिया। परिणामतः तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली को विवश होकर घोषणा करनी पड़ी कि भारती सेनाएं अब हमारे प्रति निष्ठ नहीं रही हैं। और हमारे लिए यह सम्भव नहीं कि हम भारत पर अपना आधिपत्य जमाए रखने के लिए एक नए युद्ध में उलझ जाएँ। इसलिए हम भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने का निश्चय कर चुके हैं।' परन्तु यह परिस्थिति जिस महान व्यक्ति के कर्मयोग से उत्पन्न हुई, उसे भारतवासियों ने स्वयं अपना नेता नहीं बनाया था। वह नेता बना, तो अपनी निजी वीरता, संघर्ष और बलिदान से। बर्मा के मोर्चे पर जब वह एक बार अपने कुछ साथियों सहित ब्रिटिश विमानों की बम-वर्षा में घिर गए, तो एक खाई में पड़े-पड़े जनरल शाहनवाज़ ने उनसे अनुरोध किया कि उन्हें तुरंत ही किसी अधिक सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहिए, क्योंकि ब्रटिश बम बहुत निकट ही फटे रहे थे। इस पर नेताजी ने हँस कर उत्तर दिया—"वह गोली जो मेरा काम तमाम कर सकती, अभी किसी ब्रिटिश कारखाने में तैयार ही नहीं हुई।" और इतिहास साक्षी है कि नेताजी को ब्रिटिश सेनाओं के हाथों

कभी एक मामूली घाव भी नहीं लगा। वह वीरगति को प्राप्त हुए, तो रणक्षेत्र में शत्रु की गोली वर्षा से नहीं, बल्कि विमान दुर्घटना में आग से जलकर। नेताजी यह सब कार्य कैसे कर पाए ? कलकत्ते में अपने मकान के गिर्द कड़े पहरे से निकल भागने से लेकर फार्मूसा में दुर्घटनाग्रस्त होने तक उनका जीवन-वृत असाधारण साहस और अकल्पनीय उत्साह की कहानी मालूम पड़ती है। इस साहस और उत्साह की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिलती थी ? कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब उनके आत्मविश्वास के वरदान थे—इस विश्वास के साथकि भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ती उन्हीं के हाथों बदी है। अब चाहे प्रकट में वह इस साधना में सफल न हुए हों, परन्तु, जैसा कि हमने ऊपर लिखा, भारत के स्वतंत्र होने में निर्णयात्मक हाथ वास्तव में उन्ही का था। कुछ आश्चर्य नहीं कि भारत की समस्त नेतागीरी में केवल सुभाष ही अपने साथियों के दिए हुए नाम—नेताजी—से प्रसिद्ध हैं।

हिलारी और तेनसिंह नोरके के नामों से कौन परिचित नहीं है ? इन दो वीर पुरुषों ने हिमालय में एवरेस्ट की अजेय चोटी पर पाँव रखने का सौभाग्य प्राप्त किया है। हिलारी को तो फिर भी महत्वाकांक्षी बनने की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं, क्योंकि वह एक समुन्नत देश का सम्पन्न नागरिक है। परन्तु दारजिलिंग-निवासी गरीब नेपाली तेनसिंह को किस शक्ति ने इतना साहस प्रदान किया कि वह किशोरावस्था से ही इस महान सफलता का स्वप्न देखता आ रहा था ? यह उसका आत्म-विश्वास ही था कि निर्धन परिवार में जन्म लेने और प्रायः निराक्षर रहने पर भी वह सर्वदा एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने का स्वप्न देखता रहा। और इस स्वप्न को यथार्थ में परिणत करने के लिए उसने एवरेस्ट विजय के प्रायः हर अभियान में भाग

लिया। एक मामूली शेरपा के पद से आरम्भ करके वह एक महान पर्वतारोही बन गया, और एवरेस्ट-विजेता कहलाया।

स्वेज़ नहर के झगड़े में मिस्र पर ब्रिटेन और फ्रांस के संयुक्त आक्रमण के समय प्रधान नासिर को किस शक्ति ने दृढ़ और अविचलित रखा? मिस्र के पास एक साथ विश्व के इन दो शक्तिशाली राष्ट्रों का मुकाबला करने के लिए कुछ भी नहीं था। फिर भी नासिर यही कहते रहे कि मिस्र कभी हथियार नहीं डालेगा, और ब्रिटेन को मिस्र के रेगिस्तानों में एक-एक कण के लिए अपना रक्त बहाना पड़ेगा। नासिर का यह आत्मविश्वास ही था, जिसके बल-बूते पर वह एक पिछड़ी और निर्बल जाति को ब्रिटेन जैसे शत्रु के मुकाबले पर दृढ़ रख सके, और अंततः उसे मिस्र से भागने पर बाध्य करने में सफल हुए।

युगोस्लाविया जैसे छोटे देश के प्रधान मार्शल टीटो रूसी अधिनायक स्टालिन के साथ अपने मत-भेद में किस शक्ति के सहारे डटे रहे? स्टालिन चाहता, तो एक दिन में युगोस्लाविया की ईंट से ईंट बजा देता। लेकिन उसे कभी मौखिक निन्दा से अधिक कदम बढ़ाने का साहस न हुआ। क्यों? केवल इसलिए कि टीटो को अपने मत की सत्यता और और अपने आत्मबल पर पूर्ण विश्वास था। इस आत्मविश्वास के बल पर टीटो ने कभी हार स्वीकार न की, और स्टालिन जैसा क्रूर अधिनायक मरते दम तक उसका बाल बांका न कर सका।

इन्डोनेशिया में प्रायः ही दाएँ या बाएँ पक्ष वाले तत्वों की ओर से सशस्त्र विद्रोह होते रहते हैं। एक बार प्रधान सुकार्नो जापान में थे, कि विद्रोह बहुत प्रचंड रूप धारण कर गया। आप से शीघ्रातिशीघ्र स्वदेश पहुँचने का अनुरोध किया गया। तो आपने हँसकर उत्तर दिया कि क्या मैं इस आये दिन के उपद्रव के कारण अपने भ्रमण का कार्यक्रम ही बदल दूं? सुकार्नो

ने जापान में बैठे-बैठे ही अपने मंत्रियो को आवश्यक कार्यवाही के सम्बन्ध में उपयुक्त निर्देश दिये, और अपने नियत समय पर ही राजधानी में लौटे। सुकार्नो को अपने पर इतना विश्वास है कि वह सोच भी नहीं सकते कि इन्डोनेशिया उनके बिना जीवित रह सकता है।

यही बात हमारे प्रिय प्रधान मंत्री पं० नेहरू के लिये भी सत्य है। आप भी अक्सर कहते रहते हैं कि आप प्रधान मंत्री-पद पर रहें, या न रहें, परन्तु देश के लिये आपका महत्व बराबर बना रहेगा। एक बार आपने एक विदेशी पत्रकार के साथ वार्ता करते हुए हँसी में कहा था, "आप जानते हैं, मैं बड़ा आत्मश्लाघी हूँ। मैं समझता हूँ कि देश को मेरी जरूरत बराबर बनी रहेगी।" यह आत्मविश्वास यों ही उत्पन्न नहीं हो जाता; इसके पीछे बड़ी वास्तविकता होती है। नेहरूजी ने अपने आत्मविश्वास से केवल स्वयं को ही दृढ़ नहीं रखा, बल्कि वह सम्पूर्ण देश को प्रगति-मार्ग पर सुदृढ़ बनाने में सफल हुए हैं। यह आप की ही महानता है कि भारत को आज समूचे विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ये बड़ी-बड़ी योजनाएँ, ये देशोन्नति और जन-प्रगति के महान अभियान सब आप की ही देन हैं। और आप इन महान कल्पनाओं को कार्यान्वित करने का साहस और शक्ति अपने आत्मविश्वास से उपलब्ध करते हैं। देश आपका कितना ऋणी है, इस बात के मूल्यांकन का अभी समय नहीं आया, लेकिन इतिहास साक्षी रहेगा कि जैसे सुभाष के बिना अभी बहुत वर्षों तक स्वतंत्रता-प्राप्ति एक स्वप्न ही रहती, उसी तरह नेहरूजी के बिना इतने अल्प समय में उस का दृढ़ीकरण भी अकल्पनीय था।

तो फिर जब यह परिस्थिति है, अर्थात् जब हम अपने व्यक्तिगत अध्यवसाय और संघर्ष से राष्ट्रों के नेता, विख्यात वैज्ञानिक,

सफल आविष्कारक और योग्य व्यापारी बन सकते हैं, तो पिछड़ेपन और हीनता पर संतोष कर लेना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं कि 'अविश्वास' के कारावास से बाहर निकलें ? अपने पर विश्वास करें, अपनी बौद्धिक योग्यता से काम लें, और जीवन-संघर्ष में पुरुषोचित ढग से भाग लेकर अपना उचित अंश उपलब्ध करें ? यदि आपने आज तक इस समस्या पर विचार नहीं किया; यदि आज तक आप यह अनुभव ही नहीं कर सके कि आप भी एक महान व्यक्ति हैं, और अपने भीतर के महान पुरुष को जगा कर अर्थात् अपनी सम्पूर्ण योग्यता से काम लेकर वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, जिसके आप अभिलाषी हैं, तो अपने को पीड़ित अत्याचारित समझने और अपनी दुर्दशा पर अश्रुपात करने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि आप अब भी अपनी बिगड़ी बना सकते हैं, और आत्मविश्वासी बनकर अपनी भूलों और त्रुटियों का परिशोध करके सफलता के रंगमहल में प्रवेश कर सकते हैं। आवश्यकता केवल इतनी है कि आप अपने को हीन और तुच्छ न समझें, अपने विचार ऊँचे रखें, सदैव आशावादी रहें, कठिनाइयों का दृढ़ता से मुकाबिला करें और अपनी दुर्बलताओं को दूर करने पर तत्पर रहें। उदाहरण के लिए यदि आपको बचपन में ही स्कूल छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा था, तो इस कारण घबराने और निराश होने की कोई ज़रूरत नहीं है। बेंजमन् डिज्राइली की तरह आप भी निजी अध्ययन से विद्वान बन सकते हैं। आप नाम मात्र के चंदे से किसी अच्छी पुस्तकालय का सदस्य बनकर ज्ञान-विज्ञान और कला-संस्कृति से सम्बन्धित उत्तम पुस्तकें पढ़ सकते हैं। आप जिस युग में रह रहे हैं, इसमें निजी शिक्षालयों का प्राचुर्य है। प्रत्येक उल्लेखनीय नगर-उपनगर में ऐसी बीसियों संस्थायें हैं, जहाँ मामूली शुल्क पर हर प्रकार वैज्ञानिक प्रावि-

धिक अथवा सांस्कृतिक विषयों की शिक्षा दी जाती है। ऐसी ही सुविधाएँ आज घर बैठे डाक द्वारा भी प्राप्त की जा सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्था में सुधार करके तथा अपनी मदद आप करके उन्नति करने के जितने उत्तम अवसर वर्तमान युग में प्राप्य हैं, इतने अतीत में कभी नहीं थे।

आज के जनतंत्रीय युग में समुन्नत देशों का शासन-सूत्र जिन लोगों के हाथ में है, उनमें अधिकांश का प्रारम्भिक जीवन और परिस्थितियाँ आप से बेहतर नहीं थीं। आज के बड़े-बड़े उद्योगपतियों, लेखकों और कलाविदों की जीवनियों का अध्ययन करने पर यह देखकर आश्चर्य होता है कि इनमें से बहुत कम प्रचलित अर्थों में उच्च शिक्षा पाए हुए हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि अपनी विवशता की कहानियाँ घड़ने और स्वयं को आत्म-तुच्छता के भ्रमजाल में डालने की बजाए अपने जीवन के पुन-र्निमाण का संकल्प कीजिए। अपने पर विश्वास कीजिए, अपना लक्ष्य स्पष्टतः निर्धारित कीजिये, और उस तक पहुंचने के लिए जिस मार्ग पर चलना उचित है, उस पर चलने की योग्यता प्राप्त कीजिए। और जब आप अनुभव करें कि आप अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए तैयार हो चुके हैं, और आपने स्वयं को उन सब साधनों से युक्त कर लिया है, जिनकी मार्ग में आवश्यकता होगी, तो फिर आप यात्रारम्भ में एक क्षण का भी विलम्ब न कीजिए।

याद रखिए, अकर्मण्यत, आलस्य और विलास की ये परियाँ जो मार्ग में आपको मिलती हैं, जो थोड़ा रुकने और विश्राम करने का परामर्श देती हैं; अपने यौवन और सौंदर्य से आपका मन बहलाने का प्रस्ताव करती हैं, ये सुख की नींद सुलाने वाली परियां आपकी हितचिंतक नहीं हैं। ये इससे पहले कितने ही पथिकों को इसी वासना जाल में फँसाकर विनष्ट कर चुकी हैं।

इसलिए इनकी मीठी-मीठी बातों में न आइये, बल्कि इनकी ओर आंख उठाकर भी न देखिए।—और ये झूठी शंकाओं के दैत्य, जिनके पाँव धरती पर और सिर आकाश में हैं, जिनके, आतंक से आपके हाथ-पैर शिथिल हो रहे हैं और जिनकी डरावनी आवाज़ बार-बार आपके कानों में गूँज कर आपके प्राण उड़ा रही है—ठहरो, आगे न बढ़ो, वरना तुम्हारी हड्डियाँ तक सुर्मा कर दी जाएंगी !—इन कल्पित आवाज़ों से डरने और आतंकित होने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि इनका अस्तित्व केवल तभी तक है, जब तक कि आप अपने पर भरोसा नहीं करते, और अकारण ही भयभीत होने पर आमादा हैं। इनसे निपटने का सही तरीका यह है कि इन्हें मृत समझिए, और कदम आगे ही बढ़ाते जाइए। यदि आपने दृढ़ता से कदम बढ़ाया, तो आप पर शीघ्र ही यह भेद खुल जायेगा कि दुनिया की कोई शक्ति आपका रास्ता रोकने का साहस नहीं कर सकती।

"मैं प्रधान मंत्री बन के रहूँगा," "मैं प्रधान-मंत्री-पद का बोझ उठाने को तैयार हूँ," मैं आखिर दम तक लड़ूँगा," विजय हमारी है," "स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है," "भारत आज़ाद हो कर रहेगा," "मेरा बध करने वाली गोली अभी तैयार ही नहीं हुई"—ये ऐतिहासिक वाक्य जिन व्यक्तियों के मुँह से निकले, उनमें से अधिकतर गरीब घरानों में पैदा हुए। उनका बचपन दरिद्रता में व्यतीत हुआ। उन्होंने अपने जीवन में बड़े कष्ट सहे। माता-पिता की साधनहीनता के कारण सामान्य शिक्षा से भी वंचित रहे। परन्तु इन सब कठिनाइयों के बावजूद वे ख्याति, उपाधि और धन-ऐश्वर्य प्राप्त करने में सफल हुए। कारण उन्हें अपने आत्म-बल और बाहुबल पर भरोसा था, और अपने लक्ष्य के सही होने का विश्वास था।

फिर आप क्यों आत्मविश्वास के महत्व को स्वीकार न करें ? आप क्यों इस उपाय से काम लेकर अपनी बिगड़ी न बनाएँ ? अपने लिए कोई उच्च लक्ष्य निधारित क्यों न करें ? श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, उत्तम कोटि के लेखक, व्यापारी या उद्योगपति बनने का स्वप्न क्यों न देखें। आप भी "मैं सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच कर रहूँगा" या मैं बौद्धिक जगत में नाम पैदा करके रहूंगा" जैसे संकल्प-वाक्यों से अपने अंतः करण में स्फूर्ति का संचार क्यों न करें, और अपनी तथाकथित वर्तमान हीनता, असहायता और विवशता पर संतोष क्यों कर लें ? इसलिए कि आप किशोरावस्था में इस तथ्य से परिचित न हो सके कि आप वास्तव में हीन, असहाय और विवश नहीं हैं, और यह कि केवल आत्मविश्वास के बल-बूते पर बड़े-से-बड़ा पद प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस सवाल का जवाव 'हाँ' में है, तो अब भी बीते दिनों की गलतियों को दूर करने पर तत्पर हो जाइए। आज से सही अर्थों में जीवित रहने का संकल्प कर लीजिए। डा० नॉर्मन पील कहते हैं कि इन्सान सही मानों में जिन्दा रहना तभी से शुरू करता है, जबकि वह अपनी वास्तविकता से परिचित हो जाता है।

यह परिवर्तन जीवन में किसी भी स्थल पर हो सकता है। और उसी समय से सार्थक और उपयोगी जीवन का प्रारम्भ होता है। डा० पील का विचार है कि लोग, जो हमें चलते-फिरते दिखाई देते हैं, यद्यपि सभी प्रकट में जीवित हैं, परन्तु वास्तव में इनमें अधिकतर अधूरे, अधमरे या अर्द्धजीवित ही होते हैं। सही अर्थों में जीवित केवल वहीं होते हैं, जो जीवन के उद्देश्य और प्रयोजन को समझते हैं, और अपनी वास्तविकता को पहचान कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। इसलिए आप जीवन के बहुमूल्य क्षणों का अपव्यय न कीजिए, और अभी से पूर्ण

जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लीजिये। वेद का सुन्दर वाक्य है : उद्यानं ते पुरुष नावयानम्—अथर्ववेद। अर्थात पुरुष! तुझे ऊपर उठना है, न कि नीचे गिरना। मनुष्य को निरंतर ऊपर उठना चाहिए, उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। इसी में जीवन की सार्थकता है।

अपनी वास्तविकता को पहचानिए !

आत्मविश्वास बहुत कुछ निर्भर करता है आत्मज्ञान पर। जो लोग अपनी वास्तविकता से परिचित और अपनी योग्यता के जानकार नहीं होते, वे कठिनाई से ही अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने, कोई महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने, उच्च पद प्राप्त करने, नेतृत्व संभालने अथवा दरिद्रता का अंत करके 'हजारों में एक बनने की चेष्टा करते हैं। चूंकि वे अपनी निर्माणात्मक क्षमताओं से परिचित नहीं होते, इस लिए वे स्वयं को भाग्यहीन समझ बैठते हैं, और पैत्रिक सम्पत्ति अथवा संयोग से मिले धन पर ही संतोष कर बैठ जाते हैं। वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि अपनी योग्यता से यथोचित काम लेकर एक मामूली कलर्क किसी कार्यालय का प्रधान व्यवस्थापक और एक साधारण नागरिक किसी देश का राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बन सकता है। उनका जीवन-दर्शन सम्भवतः यह होता है कि गरीब लड़के व्यक्तिगत चेष्टा से धनवान नहीं बन सकते। एक साधारण नागरिक को राष्ट्रपति बनने का स्वप्न देखने का कोई अधिकार नहीं। और विद्या रूपी सागर से श्रेष्ठता के मोती प्राप्त करने का अधिकार भी केवल उन्ही लोगों को है, जो विश्वविद्यालयों से पदवी-प्राप्त हों। ऐसे लोग 'ज्यों के ज्यों' के सिद्धांत के समर्थक होते हैं और उसे असंशोधनीय समझते हैं। यह विचारों की तुच्छता, दृष्टि

की क्षुद्रता और हीनभावना आत्मविश्वास के लिए घातक विष के समान है। यह अनभिज्ञता मनु की संतान को अपना उचित अधिकार सिद्ध करने पर तत्पर नहीं होने देती। इस लिए आत्म-परिचय को आत्मविश्वास का पहला कदम कहना अनुचित नहीं है।

'अपने को पहचानिए'—प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुक्रात का यह संक्षिप्त वाक्य सब युगों की सचाइयों का सार है। मनुष्य व्यक्तिगत उत्कर्ष और निजी शक्ति का इच्छुक हो, देश और राष्ट्र की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा के लिए कोई मार्मिक कार्य करना चाहता हो, या मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ किसी नए अविष्कार को पूर्णता के स्तर तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न-शील हो, वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में तभी सफल हो सकता है, जब कि वह अपनी वास्तविकता से परिचित हो, क्यों कि इस परिचय अथवा आत्मज्ञान के बिना वह अपनी योग्यता और सामर्थ्य पर कभी विश्वास नहीं कर सकता। और इस विश्वास के बिना वह किसी काम को सम्पन्न करने के लिए सिर-धड़ की बाज़ी नहीं लगा सकता।

मुसल्मानों की धार्मिक किताब 'कुरान' में आया है कि मनुष्य की सृष्टि के समय कुछ सहृदय फ़रिश्तों ने उसे अपनी ओर से 'संतोष' का उपहार देना चाहा। परन्तु सृष्टिकर्त्ता ने इस सुझाव को स्वीकार न किया और कहा कि मनुष्य को संतोष का उपहार देने का अर्थ उसका अहित करना है, क्योंकि इससे वह संतोषी बन जाएगा, और अपनी रचनात्मक शक्तियों से काम नहीं लेगा। दूसरे शब्दों में वह स्वयं को उस पद का अधिकारी सिद्ध नहीं कर सकेगा, जो उसे दिया जा रहा है (इस्लाम धर्म के अनुसार परमेश्वर ने मनुष्य को धरती पर अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया है) परन्तु विधाता की इस सावधानी के बावजूद

अधिकतर लोग अपने को पहचानने की कोशिश नहीं करते, और अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों से काम नहीं लेते।

विलियम जेम्स का यह कथन गलत नहीं है कि मनुष्य साधारणतः अपनी शक्ति के एक तुच्छ अंश से ही काम लेता है, और शेष बड़ा अंश उपयोग में नहीं लाता। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्राइड का कहना है कि औसत आदमी अपनी बौद्धिक शक्ति के केवल पाचवें अंश को ही उपयोग में लाता है। स्मरण रखिए कि यहाँ औसत आदमी से अभिप्राय यूरोप के समुन्नत देशों का औसत आदमी है, जोकि साधारणतः साक्षर और अपेक्ष्या अधिक समझदार होता है। जब यूरोप के लोगों की यह दशा है, तो आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि एशियायी देशों के लोग, जिनमें दुर्भाग्य से भारतवासी भी सम्मिलित हैं, और जो अज्ञानता, संकीर्णहृदयता और विचारशून्यता में अपना सानी नहीं रखते, अपनी वास्तविक बौद्धिक शक्ति के कितने अंश से काम लेते होंगे।

दरअसल हम लोग लकीर के फ़कीर हैं। हम उस मार्ग से ज़रा भी हटना पसन्द नहीं करते, जो हमारे पूर्वजों ने अपने लिए निर्धारित किया था। फिर हम में से जो लोग सुधार और नवीकरण के समर्थक हैं, वे भी अपना मार्ग स्वयं नहीं बनाते, बल्कि दाएँ-बाएँ देखते हैं, और जहाँ भी उन्हें कुछ प्रकाश दिखाई पड़ता है, उसी को 'सत्यप्रकाश' समझ लेते हैं, चाहे वह विध्वंस की ज्वाला ही क्यों न हो। इन परिस्थितियों में बौद्धिक शक्ति को समुचित उपयोग में लाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

तनिक विचार कीजिये, यदि मनुष्य अपने मस्तिष्क के केवल २० प्रतिशत भाग से काम लेकर आदिकाल के अंधकारमय युग को सभ्यता और संस्कृति के वर्तमान युग में परिणत कर सकता है, बड़े-बड़े प्रशंसनीय आविष्कार कर सकता है, घास-पात के

झोंपड़ों को गगनचुम्बी राजप्रसाद में बदल सकता है, पैदल चलने के कष्ट से बचने और समय बचाने के लिए द्रुतगामी मोटरें और हवा से बातें करने वाले विमान निर्मित कर सकता है; जंगली फल-फूलों पर गुज़ारा करने की बजाए तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन बनाने की कला विकसित कर सकता है, तो उस समय उसकी प्रगति की क्या स्थिति होती, जब वह २० प्रतिशत की बजाए ४० या ५० प्रतिशत बौद्धिक शक्ति से काम लेने पर तैयार हो जाएगा।

इस समस्या पर तनिक गम्भीरता से विचार कीजिये। यदि हम व्यक्तिगत रूप से अपनी ८० प्रतिशत बौद्धिक शक्ति का अपव्यय न करें, बल्कि इस बड़े अंश में से कुछ और शक्ति अपनी दशा सुधारने अर्थात कुछ सीखने और आगे बढ़ने में लगाएँ; अपनी दरिद्रता, साधनहीनता और अल्पज्ञान पर संतोष न करते हुए उनसे मुक्तिलाभ के लिए सचेष्ट हों, अपनी वास्तविकता से परिचित होकर बाहुबल पर विश्वास करने के अभ्यस्त हो जाएँ, और इस आत्मविश्वास के बल पर महानता के शिखर को छू लेने का प्रयास करें, तो हमारा यह प्रयास कितनी शीघ्रता से सफल हो सकता है।

एक पत्रकार ने प्रसिद्ध मनोविज्ञान-विशेषज्ञ डा० विल्वर्ड ऐलन से प्रश्न किया कि क्या कारण है कि अधिकतर लोग अधूरा जीवन व्यतीत करते हैं ? उत्तर में डा० ऐलन ने कहा—"इसका जवाब बड़ा सरल है। हम में से अधिकतर लोग अपनी योग्यताओं को प्रकाशित होने का मौका नहीं देते। हम महान कार्य कर सकते हैं। परन्तु हम अपने इस सामर्थ्य से परिचित नहीं होते। हमारे शरीर के भीतर महान शक्तियां निहित हैं। परन्तु हम उनसे काम नहीं लेते, जिससे उन्हें उन मशीनों की तरह जंग लग जाता है, जो उपयोग में न लाई जा रही हों। आप इसे अति-

श्योक्ति न समझें। हमें शारीरिक इन्द्रियाँ इसीलिए दी गई हैं कि हम उनसे काम लें। परन्तु संसार में अधिकतर लोग उनसे काम लेना पाप तुल्य समझते हैं। मेरा अभिप्राय आलसी लोगों से है। बहुत से लोग बौद्धिक शक्ति से काम नहीं लेते, चिंतन-मनन नहीं करते, दूसरों के विचारों पर गुजारा करते हैं, अथवा सुनी-सुनाई बातों से काम चला लेते हैं। यही कारण है कि वे जीवन के वास्तविक सुखों और पुरस्कारों से वंचित रहते हैं।"

वस्तुतः हममें से अधिकतर लोगों को जीवनानन्द इसलिए अनुभव नहीं होता; हम प्रतियोगिता-परीक्षा में इसलिए नहीं बैठते, अपने समवयस्कों से आगे बढ़ने का साहस इसलिए नहीं करते, अपने विचारों की अभिव्यक्ति में इसलिए संकोच करते हैं, और आत्मबल पर इसलिए भरोसा नहीं करते क्योंकि हम अपने भीतर के महान पुरुष को नहीं पहचानते, अपनी बौद्धिक शक्ति से काम नहीं लेते और सोच-विचार की आदत नहीं डालते। उर्दू के प्रसिद्ध कवि डा० इक़बाल ने क्या खूब कहा है—

अपनी असलीयत से हो आगाह
ऐ ग़ाफ़िल कि तू।
क़तरा है, लेकिन मिसाले बहरे
बेपायाँ भी है।

इसे कवि की सूक्ष्म कल्पना न समझें। यह मानव-रूपी क़तरा (बूँद) वास्तव में 'बहरे बेपायाँ' (असीम सागर) है। मनुष्य वस्तुतः असीम शक्ति और अपरिमित बल-निधि का स्वामी है। उसे 'कालशिरोमणि' कहा गया है। वह निर्माण और रचना का निर्णायक है।

एक अँग्रेज़ साहित्यकार ने इस 'दुर्बल जीव'—के सम्बन्ध में लिखा है—नक्षत्र लुप्त हो जायेंगे, सूर्य का प्रकाश मंद पड़ जाएगा। परन्तु मनुष्य की आत्मा सदा तेजवान रहेगी। उस

तक काल का हाथ कभी न पहुँच सकेगा। यह गीता के उपदेश के बिल्कुल अनुकूल है। मनुशास्त्र में आया है—यमो वैवस्वतो देवों मस्तवैषहदिस्थितः अर्थात, पुरुष ! तेरे हृदय में सर्वान्तार्यामी सर्वनियामक आत्मदेव का वास है।

कवियों और दार्शनिकों के अलावा वैज्ञानिक भी मानवी आत्मा के गुण गाते हैं, और उसे अविनाशी, शाश्वत और सृष्टि का स्वामी स्वीकार करते हैं। डा० कैरल लिखते हैं : मनुष्य की सृष्टि पहाड़ों, दरियाओं और समुद्रों के मापदंड से हुई। अर्थात जिस शक्ति की वाहिकाएँ ये प्राकृतिक रचनाएँ हैं, वही शक्ति इस 'मिट्टी के पुतले' में है। परन्तु यह शक्ति विशुद्ध शारीरिक नहीं है। मनुष्य की एक और दुनिया भी है, और वह उसके अंतःकरण की दुनिया है। आत्मा, बुद्धि और मन की यह दुनिया काल और देश के प्रतिबंधों से मुक्त है। यदि इस आन्तरिक जगत में मनुष्य की आत्मा शुद्ध-पवित्र, संकल्प दृढ़ और सुस्थिल तथा अभिलाषा प्रबल और अगाध हो, तो वह बाह्य जगत को भी अपने अधीन कर सकता है।

यदि आप अपने अंतःकरण की एक झलक देख लें; विधाता ने बुद्धि और विवेक के रूप में जो निधि आपको प्रदान की है, उसका पता लगा लें, तो फिर आप गरीबी, बेबसी और माँगे-ताँगे की समझ पर संतोष नहीं कर सकते। यदि आप एक बार अपनी हक़ीक़त को जान लें, तो फिर आप किसी के पीछे चलने पर राजी नहीं हो सकते। मानवी महिमा के ज्ञाता ऐमर्सन कहते हैं : विद्यारूपी आकाश में जो तारे चमक रहे हैं, उनके प्रकाश से ज्यादा तेजवान मनुष्य के अपने मस्तिष्क और विवेक की ज्योति हैं। मनुष्य को इसके दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए। आधुनिक युग के इस विचारक का यह कथन बहुमूल्य और सचाई पर आधारित है।

स्रष्टा ने कोई से दो इन्सानों को एक सा नहीं बनाया। जो कुछ आप हैं, वह और कोई नहीं बन सकता। इसलिए अपने भीतर झाँकिए, प्रत्येक समस्या पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार कीजिये और अपनी सम्मति की अभिव्यक्ति में कभी संकोच न कीजिए। आपकी सम्मति मूल्यवान है। हो सकता है वह अन्य विचारकों के मत से अधिक महत्वपूर्ण समझी जाए। तनिक उसे प्रकट तो कर देखिए।

दुनिया केवल उन्हीं विचारकों, दार्शनिकों, लेखकों, कवियों, वैज्ञानिकों और विद्वानों का आदर करती है, तथा उनकी कृति की सराहना करती है, जिनके विचारों और मताभिव्यक्त में नवीनता होती है। अश्वघोष, कालीदास, शैक्स्पीयर, गोयटे, सादी, बर्नार्डशा, ग़ालिब और रवीन्द्रनाथ इसलिए सम्मानित और आदरणीय हैं कि उन्होंने अपने आंतरिक प्रकाश को प्रस्फुटित किया। इनमें से कोई भी पुरातन मार्ग पर चलकर सफलता और प्रसिद्धि के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हुआ। इसलिए अपना सम्मान कीजिए; स्वाभिमानी बनिए। स्वयं को असहाय न समझिए; किसी से दब कर न रहिए। छाती तान कर चलिए; किसी की खुशामद न कीजिए। अपने विचारों और सम्मतियों की अभिव्यक्ति में संकोच न कीजिए। आप एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। आपका व्यक्तित्व सबसे प्रखर, आपकी सम्मति सबसे सुस्थित और आपके विचार सबसे ज्यादा मूल्यवान हो सकते हैं। जब न्यूनटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, तब ऐसा विचार धर्म-विरोधी तक समझा गया। परन्तु इस कारण न्यूटन ने मत-परिवर्तन नहीं कर लिया। कॉपरनिकस, ब्रूनो और गलैलियो को पृथ्वी की गतिशीलता और सौर-परिवार सम्बंधी अपनी स्थापना की रक्षा के लिए प्राणों तक को दाँव पर लगाना पड़ा। इसलिए आपभी इन महापुरुषों की तरह स्वतंत्र विचार-पद्धति

को अपना धर्म बना लीजिए। अवश्य पहले से यह जमानत तो नहीं दी जा सकती कि आपका हर विचार या सिद्धांत किसी नए आविष्कार की भूमिका जरूर ही बनेगा, परन्तु इसकी सम्भावना प्रकट है। इसलिए आप अपने अस्तित्व को दुनिया के सामने पेश तो कीजिए।

जब आप अपनी वास्तविकता से परिचित हो जाएँगे, तो फिर आपको अपने पर, अपने बाहुबल पर और दैवी सहायता पर निर्भर करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होगी। इसमें संदेह नहीं कि आप महापुरुषों की कीर्ति और उनके उच्च एवं पवित्र विचारों से लाभ उठाएंगे। परन्तु लाभ उठाने का अर्थ स्वयं अपनी विचार-शक्ति का द्वार बन्द कर देना नहीं है। एक बार जब आपको विश्वास हो जायेगा कि आप अतीत के महानुभावों की अपेक्षा मानवी जगत की अधिक सेवा कर सकते हैं, तो आप निःसंकोच होकर घटना-सागर में कूद पड़ेंगे। जब आप अपना सम्मान स्वयं करेंगे, तो आपके सहयोगी और साथी भी आपका सम्मान करेंगे। जैसा कि फ़ारसी कवि बुखारी ने एक स्थान पर कहा है—"मुझ जैसा नश्वर मनुष्य भी ऐश्वरीय सृष्टि में त्रुटि ढूंढता है। परन्तु मैं नतमस्तक हो जाता हूँ, जब अपनी कला का चमत्कार देखता हूँ।"

ऐसे ही आत्मज्ञान से आप वह शक्ति प्राप्त करेंगे, जो पहाड़ों को उखाड़ फेंकती है, और जिसके बल पर पराक्रमी व्यक्ति किसी देश के शासक, सुयोग्य सेनापति या अपने समय के युगपुरुष बन जाते हैं। फिर आप किसी निर्धन परिवार में जन्म लेने और प्रारम्भिक जीवन प्रतिकूल वातावरण में बिताने के बावजूद पदैश्वर्य और धन-समृद्धि की प्राप्ति को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझेंगे। आप अपनी उन त्रुटियों और दुर्बलताओं को दूर करने पर तत्पर हो जाएँगे, जो आपके अपने अभीष्ट लक्ष्य तक

पहुँचने में बाधक हैं। और तब आप छाती तान कर यह कहते हुए जीवन-संग्राम में कूद पड़ेंगे कि अब इस मैदान में विजय-वैभव, महानता और यश-कीर्ति मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

मनु का पुत्र जब इस संकल्प और विश्वास के साथ जीवन की रण-भूमि में प्रवेश करता है, तो सफलतारूपी दुल्हिन वर-माला लिए उसकी प्रतीक्षा करती है, और विजयश्री उसका स्वागत करने को तैयार रहती है। ऐसे मेधावी पुरुष को कोई पराभूत नहीं कर सकता; उसे अपने गन्तव्य पर पहुँचने से रोक नहीं सकता।

आप की मनोकामना क्या है ?

अपने को पहचानिए—यह मंतव्य प्राचीन यूनान के दार्शनिक सुक्रात का है। परन्तु आज के 'सुक्रात' इससे एक कदम और आगे बढ़कर कहते हैं—अपनी मनोकामना और अपनी उत्कंठा को पहचानिए। अर्थात यह मालूम कीजिए कि आप क्या चाहते हैं। प्रकट में यह विस्तार कुछ अनावश्यक सा जान पड़ता है, क्योंकि अपने को पहचानने में अपने मनोरथों को पहचानना भी सम्मिलित है। परन्तु शतियों के अनुभव ने सिद्ध किया है कि अपनी वास्तविकता को जानने का दावा करने वाले कुछ लोग केवल इसलिए सफल नहीं होते कि उन्हें जीवन की लम्बी यात्रा में कभी यह मालूम ही नहीं होता कि वे क्या बनना चाहते हैं, और क्या बन सकते हैं। वे आत्मविश्वास और आत्मज्ञान के महत्व से तो परिचित होते हैं, परन्तु अपने निरंतर संघर्ष और अविश्राँत परिश्रम का फल पाने से केवल इसलिए वंचित रह जाते हैं कि वे ठीक से निश्चय नहीं कर पाते कि वे जीवन के किस विभाग में उन्नति करने के लिए पैदा हुए हैं।

असफल व्यक्ति भी स्वयं को उन्नति का पात्र समझता है, और अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों से यथासम्भव काम भी लेता है। परन्तु दीर्घ कालीन संघर्ष के बाद भी सफलता की देवी के दर्शन नहीं कर पाता। और यदि कुछ सफलता

मिलती भी है, तो वह उसकी मनोकामना के अनुसार नहीं होती। इसपर वह बहुत हैरान और निराश हो जाता है। कभी-कभी तो यह निराशा इतनी बढ़ जाती है कि वह इस सिद्धांत पर ही आस्था गँवा बैठता है कि मनुष्य एक समर्थ और सत्तायुक्त जीव का नाम है, और यह कि वह अपनी आविष्कार-क्षमता से काम लेकर कोई महान कार्य कर सकता है, अथवा अपनी दरिद्रता, विवशता और असहायता को सुख-समृद्धि और सामर्थ्य में परिणत कर सकता है। ऐसे लोगों की मनोवृत्ति पलायनवादी हो जाती है। उनका आत्मविश्वास केवल मौखिक और काल्पनिक ही बन कर रह जाता है। वे कभी तो बड़े उत्साहित और आशापूर्ण दिखाई देते हैं, और कभी नैराश्य और साहसहीनता की मूर्ति बन जाते हैं। ऐसे एक प्रौढ़ सज्जन से मैं व्यक्तिगत रूप से परिचित हूं। वह जीवन भर ठोकरें खाने के बाद भी उन्नति के स्वप्न देखते रहते हैं, और बड़े विश्वास के साथ कहते हैं कि वह एक महान व्यक्ति बनकर रहेंगे। उनसे कहा जाए कि वह जीवन के पैंतालीसवें वर्ष में इस प्रकार के सुहावने सपने न देखा करें, क्योंकि जब वह पिछले बीस वर्षों में अपनी वित्तीय कठिनाइयों पर काबू नहीं पा सके, और कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर सके, तो अब जबकि वह प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर चुके हैं, वह कैसे प्रगति कर सकते हैं। उत्तरस्वरूप वह तुरंत किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम लेते हैं, जिसने जीवन के अंतिम दिनों में सफलता और ख्याति प्राप्त की थी। हमारे इन सज्जन का प्रकट उत्साह और साहस प्रशंसनीय हैं, परन्तु कभी-कभी वह भी आत्मग्लानि का अनुभव करने लगते हैं, और तब उनसे साक्षात करने पर यह आभास होता है कि अब इन में जीवन की शक्ति शेष नहीं रही, और अब वह शायद ही कभी युद्ध के लिये उद्यत हों।

ऐसे उच्च विचारों वाले साहसी और पराक्रमी पुरुषों का

यह दुःख भरा अंत निश्चय ही खेदजनक है। परन्तु वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग न तो जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते समय यह सोचने का कष्ट करते हैं कि विधाता ने उन्हें किस विभाग में सफल होने की योग्यता प्रदान की है, और न व्यवहारिक जीवन में वर्षों तक ठोकरें खाने के बाद उन्हें यह ज्ञात होता है कि उनकी मनोकामना क्या है। वे घाट-घाट का पानी पीने अर्थात विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में भाग लेने के बाद भी यह निश्चय नहीं कर पाते कि वे किस विभाग में अपने रचनात्मक गुणों का परिचय दे सकते हैं और अपने कर्मोत्साह का प्रदर्शन कर सकते हैं। ऐसे लोग प्रायः एक साथ कई कलाओं के ज्ञाता होते हैं, और उन पर पर्याप्त अधिकार भी रखते हैं। परन्तु उनसे पूछिए कि इनमें से किस कला या कौशल को अपनी मनोकामना के अनुकूल समझते हैं, और किसमें अपनी योग्यता का पूर्ण प्रदर्शन कर सकते हैं, तो वे तुरन्त ही कोई उत्तर नहीं दे सकेंगे, जैसे वे अभी तक दुविधा में हों, और अभी तक यह निश्चय न कर पाए हों कि वे अपनी शक्तियों को किस काम में लगा कर उन्नति के शिखर पर पहुँच सकते हैं। यही अनिश्चितता अथवा अस्थिरता उनकी असफलता या आंशिक सफलता का मुख्य कारण है।

इस दुविधा ने असंख्य लोगों की जीवन-नौका निराशा के समुद्र में डुबो दी है, या कम से कम उन्हें अभी तक सफलतारूपी तट पर पहुंचने नहीं दिया। मेरे परिचित व्यक्तियों में एक सज्जन पिछले पन्द्रह वर्ष से संघर्ष कर रहे हैं, परन्तु अभी तक कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर पाए। वह उस समय भी बड़े बुद्धिमान, परिश्रमी और आदर्शवादी थे, जब वह एक कलर्क के रूप में जीवन क्षेत्र में प्रविष्ट हुए, और आज भी बड़े समझदार और विवेकशील व्यक्तियों में गिने जाते हैं, परन्तु आर्थिक विवशताओं ने अभी तक उनका पीछा नहीं छोड़ा। उनकी दुर्दशा

का अनुमान इस बात से लगाइए कि वह एक अत्यंत ही लाभ-दायक योजना को केवल इस लिए कार्यान्वित नहीं कर सके कि वह उसके लिए अपेक्षित तीन-चार हज़ार रुपये की सामान्य रकम का प्रबन्ध करने में असमर्थ रहे।

इस व्यक्ति ने अपना जीवन बनाने के लिए घोर परिश्रम किया है। मुझे स्मरण है कि जब वह स्कूल में पढ़ता था तो रातों जाग कर अध्ययन में तल्लीन रहता था। वह गरीब पिता का पुत्र था, इसलिए नियमित रूप से उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। परन्तु उसने अपनी व्यक्तिगत चेष्टा से शैक्षणिक योग्यता प्राप्त की। वह युवावस्था से ही महानता के स्वप्न देखा करता था। वह क्लर्क बने रहने पर संतोष नहीं कर सकता था। अतएव द्वितीय महायुद्ध में वह एक अधीनस्थ सेनाधिकारी के रूप में सेना में भरती हो गया। परन्तु सैन्य जीवन और युद्ध से उसका मन शीघ्र ही ऊब गया। यदि वह इस प्रकार हतोत्साहित न होता, और मनोयोग से अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहता, तो उसके लिए सेना में ही उन्नति के बड़े सुअवसर थे। वह स्वयं बतलाता है कि उसके कुछ साथी आज मेजर और कर्नल बन चुके हैं। परन्तु उसके मन में यह धारणा बैठ गई थी कि उसे दुनिया में कुछ और ही काम करना है। इस लिए युद्ध समाप्त होते ही उसने सैन्य सेवा को अंतिम प्रणाम किया, और एक व्यापारिक संस्था से सम्बद्ध हो गया। परन्तु कुछ समय बाद उसने यह सम्बन्ध भी तोड़ दिया और अपनी पूँजी एक ऐसे कारबार में लगा दी, जिसमें यदि सफल हो जाता, तो जीवनपर्यंत सुख का साँस लेता। परन्तु चंचल प्रकृति ने यहाँ भी उसका पिंड न छोड़ा, और मामूली कठिनाइयों से घबरा कर उसने निजी व्यापार को भी तिलांजली दे दी। इसके बाद वह कई संस्थाओं से सम्बद्ध रहा, परन्तु

किसी एक का बन कर न रह सका। परिणाम यह है कि वह अभी तक परेशान है, वह अभी तक अपने परिश्रम का फल नहीं पा सकता और अपने उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच सका, जिस के लिए उसने जीवन के अनेक सुखों और प्रसादों से स्वयं को वंचित रखा है।

यह बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति अब भी संभल सकता है, अब भी अपनी दुर्दशा को सम्पन्नता में परिणत कर सकता है। वह अब भी उस ध्येय को प्राप्त कर सकता है, जिसके स्वप्न वह देखा करता था, और जिसकी प्राप्ति के लिए वह अब भी बहुत कुछ करने को तैयार है—बशर्ते कि वह मालूम करले कि उसकी रुचि और झुकाव किस विभाग की ओर हैं, वह किस कार्य-क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकता है। मुझे विश्वास है कि यदि वह अब भी किसी एक क्षेत्र से स्थायी रूप से सम्बद्ध हो जाए, और उसमें सफलता-सिद्धी के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दे, तो वह अब भी सफल हो सकता है।

यह सच है कि अब उस में वह पहले जैसा उत्साह शेष नहीं रहा, और बार-बार की असफलताओं के कारण अब उसे अपने पर पहले जैसा विश्वास भी नहीं रहा। परन्तु यह समस्या बिल-कुल ही असाध्या नहीं है। अपने मनोरथ को ठीक से पहचान कर सही लक्ष्य स्थिर करने के बाद सफलता प्राप्त करने की योजना बना ली जाए, तो कर्मोत्साह पुनः स्थापित हो सकता है।

जीवन में सफल होने और सार्थक जीवन यापन करने का सही कार्यक्रम वही है, जिसका निर्देश आज के 'सुक्रात' और आधुनिक युग के अनुभवी विचारक करते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम किशोरावस्था में ही अपनी मनोकामना को पहचान लें, और अपनी रुचि और झुकाव के अनुसार

अपने लिए उस कार्य-क्षेत्र का निर्वाचिन करें, जिसमें हम अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और अपनी विशिष्ट विभूतियों का पूरा-पूरा परिचय दे सकें। यदि हमारा चुनाव ठीक होगा, तो फिर दुनिया को कोई ताकत हमें सफलता के मंदिर में प्रवेश करने से रोक नहीं सकेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यदि हम एक बार अल्पबुद्धि अथवा अदूरदर्शिता से ग़लत मार्ग पर चल निकलें, तो उसे छोड़ कर सही रास्ता अपनाना निन्दनीय समझा जाए, और अपनी गलतियों और त्रुटियों का प्रतिकार न किया जाए। स्रष्टा ने मनुष्य की प्रकृति में बड़ी लचक रखी है। मनुष्य चाहे, तो जीवन के किसी भी मोड़ पर अपने आचार-विचार में परिवर्तन कर सकता है। मनोविज्ञान विशेषज्ञों का कहना है कि मनुष्य जब चाहे अपनी पुरानी आदतों का परित्याग कर नई आदतें अपना सकता है। और यह सिद्धांत सत्य पर आधारित है। मैं ऐसे बीसियों व्यक्तियों को जानता हूँ, जिन्हों ने सामान्य प्रयत्न, बल्कि एक बार के दृढ़ संकल्प से ही किसी ऐसी आदत का सदा के लिए परित्याग कर दिया, जिससे मुक्ति पाना असम्भव प्रायः समझा जाता था जब केवल इच्छाशक्ति से असम्भव को सम्भव बनाया जा सकता है, तो आदतों का परित्याग और उनके स्थान पर नई आदतों का पोषण दुष्कर क्यों समझा जाए। इस लिए यह कहना ग़लत नहीं कि मनुष्य अपने व्यक्तिगत प्रयत्न और धैर्य-दृढ़ता से काम ले कर खोए हुए विश्वास को पुनर्स्थापित कर सकता है, और पुनः आत्म-विश्वास और कर्मशीलता की मूर्ति बन सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आपको हर हालत में सफलता का स्वप्न देखने का अधिकार है, बशर्ते कि आप अपने लक्ष्य को जानते हों, और अपनी दृष्टि उँची रखते हों। उर्दू के किसी अज्ञात कवि ने क्या खूब कहा है—

झुक-झुक के देखता हूँ मैं तूबा को अर्श को,
कुछ इस कदर बुलन्द मिलो है नज़र मुझे।

अर्थात मेरी दृष्टि इतनी ऊँची है कि मुझे आकाश को और स्वर्ग के सुगन्धित पेड़ों को देखने के लिए अपने स्थान से झुकना पड़ता है।

यह उच्च दृष्टि सफल लोगों की विशिष्टता है। इसी से वे आत्मविश्वासी बने, कर्म के लिए उद्यत हुए और सफलता के शिखर पर पहुँचे। परन्तु स्मरण रहे कि उन्होंने एक ही बार में अपने गन्तव्य पर पहुँचने की चेष्टा नहीं की, बल्कि एक-एक पग आगे बढ़ते रहे। और जब वे एक स्थल को पार कर लेते थे, तो दूसरे को पार करने की तैयारी करते थे। आपभी क्रमशः आगे बढ़िए। सब से पहले अपना एक लक्ष्य निर्धारित कीजिए और विचारिए कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिएकितनी और कैसी योग्यता अथवा पूंजी की आवश्यकता है। और वह कौनसा सुगम मार्ग है, जिस पर चलने से आपकी सफलता की सम्भावनाएँ निश्चित हो सकती हैं। इसके बाद अपेक्षित 'ज्ञान' अथवा 'पूँजी' की उपलब्धि के लिए प्रयत्न कीजिए। असफलता की चिंताओं को अपने मस्तिष्क पर अधिकार न करने दीजिए। इस प्रकार जब आप परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेंगे, तो सफलता का राजपथ स्वयंमेव प्रशस्त होता जाएगा।

ज़िला परिषद के एक स्कूल के मैट्रिक पास अध्यापक ने जब अपने एक जानकार को, जो किसी विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर थे, नौकरी दिलाने के लिए पत्र लिखा, तो प्रोफ़ेसर साहब ने सहमति प्रकट करते हुए उत्तर दिया—आप साइकल लेकर मोटरों की दौड़ में भाग लेना चाहते हैं! यदि विश्वविद्यालय में आने की इच्छा है, तो पहले मोटर का प्रबन्ध कीजिए। अर्थात स्वाध्याय से अपनी शैक्षणिक योग्यता बढ़ाइए, और तैयारी करके निजी तौर पर

उच्च परीक्षाओं में बैठिए। उनमें उत्तीर्ण होने के बाद ही यहाँ आने का विचार कीजिए। यह परामर्श बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अध्यापक महाशय ने कुछ ही वर्षों के अध्ययन से कई पदवियाँ प्राप्त कर लीं, और शीघ्र ही एक बड़े कालेज में प्रोफ़ेसर नियुक्त हो गए।

उनके प्रोफ़ेसर मित्र ने जो परामर्श दिया था, वह निश्चय ही इस योग्य है कि उन्नति के इच्छुक नवयुवक उसे सदैव अपने सामने रखें। यदि आपभी मोटरों की दौड़ में भाग लेना चाहते हैं, तो सब से पहले यह मालूम कीजिए कि आपको किस प्रकार के मोटर को जरूरत है। फिर साइकिल को मोटर में बदलने की व्यवस्था कीजिए। यह काम केवल सुहावने सपने देखने अथवा भाग्यावलम्बी बने रहने से नहीं हो सकता। इसके लिए निरंतर संघर्ष करने और क्रमशः आगे बढ़ने की जरूरत है।

अपनी योग्यता और रुचि का सही अनुमान लगाने और एक-एक पग आगे बढ़ने को ज्यादा महत्व इस लिए दिया जाता है कि इस प्रकार उन्नति करने में साधक को प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता, सामयिक असफलताओं का मुँह नहीं देखना पड़ता, और यदि कभी विफलता होती भी है, तो वह हताश नहीं होता, अपना आत्मविश्वास नहीं गंवाता। उसे पता होता है कि उसमें ऐसी कठिनाइयों पर काबू पाने की क्षमता है, इसलिए उसका साहस बना रहता है। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि लगातार असफलताएँ बड़े से बड़े साहसी आशावादी को भी निराशावादी बना देती हैं, और उसके आत्मविश्वास पर बहुत गहरी चोट लगाती हैं।

इटली के प्रसिद्ध देश-भक्त मैज़ीनी ने अपने देश की स्वाधीनता के लिए घोर संघर्ष किया। उसे एक मोर्चे पर हार होती

थी, तो वह हताश नहीं होता था, बल्कि दूसरा मोर्चा लगा देता था। मैज़ीनी ने 'तरुण इटली' नामक आन्दोलन की नींव रखी और देशवासियों को दासता के बंधनों से मुक्त होने के लिए आह्वान किया। इस पर 'राज्य सत्ता' उसके लहू की प्यासी हो गई और उसे बंदी बना कर फाँसी के तख़ते पर चढ़ाने पर तुल गई। तब देशभक्त मैज़ीनी ने अनिच्छा पूर्वक अपने देश से विदा ली, और पड़ोसी देशों से अपने आन्दोलन के पक्ष में लेखन-प्रकाशन का अभियान जारी रखा। परन्तु 'सत्ता' ने यहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। मैज़ीनी का एक जीवनी लेखक लिखता है कि शासन के गुर्गे निरंतर उसकी तलाश में रहते थे। वह एक मकान को छोड़ कर दूसरे में और एक नगर से भाग कर दूसरे में शरण लेता था। कभी-कभी मैज़ीनी के किसी मकान को छोड़ने और पुलिस के वहाँ पहुंचने में केवल चार-पाँच मिनट का ही अन्तर रह जाता था। अंततः वह लन्डन पहुँचा, जो सदा से राजनीतिक विद्रोहियों का सुरक्षित रक्षा-स्थान रहा है, और वहाँ बैठ कर उसने अपने आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए लेख और पुस्तकें लिखीं। परन्तु उस के यह प्रयत्न सफल न हुए। देशवासियों ने उसकी आवाज़ पर उचित ध्यान न दिया। जब कभी सफलता की मंज़िल निकट आई तब देशवासी पाखंडियों और सत्ताधिकारियों के षड़यंत्रों का शिकार हो गए। इस प्रकार निरंतर असफलताओं के कारण मैज़ीनी के जीवन में एक समय ऐसा भी आया, जब उसे इटली के बाह्य जगत में ही नहीं, स्वयं अपने अंतःकरण की दुनिया में भी अंधकार दिखाई देने लगा। वह अपने उन दिनों की मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखता है—'बहुधा मैं यह अनुभव करता हूँ कि कहीं मैं ही तो पथभ्रष्ट नहीं, कहीं मैं ही तो ग़लती पर नहीं। जब अपने पराए सभी मेरे विरोधी हैं, जब मेरे सहयोगी ही मेरी निष्ठा पर संदेह करने लगे हैं, जब

देशवासी मेरी पुकार पर कान नहीं धर रहे हैं, तो क्या यह सम्भव नहीं कि मेरा चुना हुआ रास्ता ही ग़लत हो, मेरी आवाज़ असामयिक हो और मेरे विचार ही भ्रममूलक हों ?' मैज़ीनी इस अंधकार में कई मास तक भटकता रहा । इसके बाद जब शंकाओं के बादल छँट गए, तो उसपर प्रकट हुआ कि सतमार्ग वही था, जिस पर वह चल रहा था । मैज़ीनी ने अपनी आत्म-कथा में उन दिनों का हाल बड़े विस्तार के साथ लिखा है, जब उसके मन व मस्तिष्क पर निराशा, निरुत्साह और शंका का अंधकार छाया हुआ था । उसने इस वृत्तांत को लिपि बद्ध करने की आवश्यकता इस लिए अनुभव की ताकि आगे आने वाले लोग जब इस प्रकार के आन्दोलनों में भाग लें और सामयिक असफलताओं से हताश होने लगें, तो मैज़ीनी की आत्मकथा के इस परिच्छेद से प्रेरणा ग्रहण करें और असफलता के आघात को वीरतापूर्वक सहन कर सकें।

मैज़ीनी एक चरित्रशाली पुरुष था । उसे अपने लक्ष्य और आदर्श से अलौकिक प्रेम था । इतना प्रेम कि जब एक सुन्दरी ने उससे प्रणय निवेदन कर विवाह की इच्छा प्रकट की, तो उसने उत्तर में कहा कि मेरे पास सिर्फ़ एक ही दिल है, और उसे मैं अपने देश को समर्पित कर चुका हूँ । अब मेरे हृदय में किसी और के प्रेम के लिए स्थान नहीं है । जब ऐसा दृढ़ हृदय पुरुष भी असफलताओं से उदासीन हो सकता है, जब उसे भी अपने आदर्श की सत्यता में संदेह हो सकता है, जब उसका आत्मविश्वास भी विचलित हो सकता है, तो फिर विचार कीजिए कि उन लोगों के निराशा-गर्त्त में गिरने की सम्भावना कितनी अधिक है, जो गुण-चरित्र और धैर्य-दृढ़ता में मैज़ीनी के पासिंग भी नहीं हैं ? मैज़ीनी का लक्ष्य स्पष्ट और उज्ज्वलित था । उसकी महत्वा-कांशा बड़ी पवित्र और निःस्वार्थ थी। इसके बावजूद वह अवि-

चल न रह सका। तो फिर उन लोगों की दशा दयनीय क्यों न हो, जिनका ध्येय मनुष्य मात्र के कल्याण से ज़्यादा अपने स्वार्थ की सिद्धि है। इस तुलना का आशय यह नहीं कि व्यक्तिगत उन्नति की इच्छा या उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्न करना प्रशंसनीय नहीं है, बल्कि केवल इस तथ्य का स्पष्टीकरण उद्दिष्ट है कि पहली भावना दूसरी से अधिक पवित्र और पावन है। इस लिए मनुष्य उसके प्रभावांतर्गत अधिक कष्ट सहन कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब इतना पवित्र और स्पष्ट लक्ष्य रखने वाले व्यक्ति भी असफलता से हतोत्साहित हो सकते हैं, तो हम साधारण लोगों को उपाय बल के अभाव अथवा असावधानी से अपने मार्ग में कठिनाइयों के पहाड़ खड़े करने से सदैव बचना चाहिए।

आप क्या चाहते हैं—इस का उत्तर अपनी परिस्थिति विशेष और अपनी योग्यता की समीक्षा करके मालूम कीजिए। इस विषय में आप जितनी ज़्यादा सावधानी और समझ-बूझ से काम लेंगे, उतनी ही आप को अपने जीवन-निर्माण में सुविधा होगी। इस प्रकार गहरे सोच-विचार के बाद आप यह स्थिर कर लें कि आप की मनोकामना क्या है, तो उसकी पूर्ति करने वाला लक्ष्य निश्चित कीजिए, और उसकी प्राप्ति के प्रयत्नों में जुट जाइए।

अधिकतर लोग जीवन की प्रतियोगिता में केवल इस लिए मुंह की खाते हैं कि वे अपना कोई स्पष्ट और साध्य लक्ष्य निर्धारित नहीं करते। वे यह तो अनुभव करते हैं कि उनका वर्तमान कार्य-विभाग उनके स्वभाव और रुचि के अनुकूल नहीं है, और वे इसमें अधिक उन्नति नहीं कर सकते। परन्तु वे निश्चित रूप से किसी दूसरे विभाग की ओर भी संकेत नहीं कर सकते, जो उनके मनोरथों की पूर्ति का साधन बन सकता हो,

कुछ लोग नितांत स्पष्ट और निश्चत शब्दों में कहते सुने जाते हैं कि वे किसी प्रांत के मुख्यमंत्री अथवा राज्यपाल बनने जा रहे हैं। परन्तु इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है, उसका कोई संतोषजनक उत्तर उनके पास नहीं होता। सच तो यह है कि वे इस मौलिक प्रश्न पर विचार ही नहीं करते। फलस्वरूप वे प्रायः कोरे आदर्शवादी ही बने रहते हैं। डा० पील एक ऐसे ही नवयुवक के साथ अपनी एक बातचीत का विवरण बतलाते हुए लिखते हैं कि यह नवयुवक, जिसकी अवस्था प्रायः पचीस वर्ष की थी, और जो अपनी वर्तमान नौकरी से असंतुष्ट था, परामर्श के लिए मेरे पास आया। वह जीवन में कोई बड़ा काम करना चाहता था और इस सिलसिले में मेरे पथप्रदर्शन का प्रार्थी था। उसकी बातें सुनकर मैंने उससे पूछा कि तुम किस कार्य-क्षेत्र को पसन्द करते हो ? बोला, "मैं उसका स्पष्टीकरण नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने इस प्रश्न पर कभी विचार ही नहीं किया। मैं केवल इतनी बात जानता हूँ कि मैं अपने वर्तमान काम से तंग आ गया हूँ।"

"अच्छा, तो यह बताओ कि तुम्हारी रुचि किस ओर है और तुम अपने ख्याल में किस काम को लगन के साथ कर सकते हो ?"

"यह मैं नहीं जानता। मैंने इन बातों पर विचार नहीं किया। मैं तो सिर्फ अपना वर्तमान काम छोड़ना चाहता हूँ।"

"अच्छा, अगर तुम्हें विभिन्न विभागों में से किसी एक को चुनने का अवसर दिया जाए, तो तुम किस विभाग में जाना चाहोगे, तुम्हारी स्वाभाविक इच्छा क्या होगी ?"

"यह मैं कुछ करने के बाद ही बता सकता हूँ।" यह उसका अंतिम उत्तर था ! तब मैंने उसे सम्बोधित कर कहा—"देखो, तुम अपने वर्तमान विभाग से किसी दूसरे विभाग में जाना

चाहते हो, लेकिन तुम नहीं जानते कि किस विभाग में जाना चाहते हो। तुम्हें यह भी मालूम नहीं कि तुम्हारी हार्दिक इच्छा क्या है, और तुम किस काम को करने के इच्छुक हो। इस अवस्था में यदि तुम अपनी दशा सुधारना चाहते हो, तो पहले अपने विचारों को संगठित करो, और जो प्रश्न मैंने अभी-अभी तुम से किए हैं, उनके उत्तर जानने की चेष्टा करो। अन्यथा तुम्हारे सुधार की कोई सम्भावना नहीं है।"

यदि आप उस उज्जवल लक्ष्य को प्राप्त करने के अभिलाषी हैं, जो एक दीर्घ काल से आप के सामने है, तो पहले अपने विचारों का संगठन कीजिए, उन पर आलोचनात्मक दृष्टि डालिए, और फिर स्थिर कीजिए कि आप क्या चाहते हैं। जब एक बार निश्चय करलें, और अपना लक्ष्य निर्धारित करलें, तो फिर पुरुषोचित ढंग से वहाँ तक पहुँचने का प्रयास कीजिए। मार्ग काँटीला और उसमें उतार-चढ़ाव हैं, तो उसकी परवाह न कीजिए। अपने पर भरोसा कीजिए। फिर कांटों को हटाकर मार्ग बनाना सहज हो जाएगा, और उतार-चढ़ाव को पार करने में भी कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

भय पर विजय

भय आत्मविश्वास का शत्रु है। दुनिया में बहुत से लोग अपनी योग्यता का समुचित पुरस्कार पाने से वंचित रहते हैं; और अपने सदगुणों से स्वयं को, अपने परिवार और सम्बंधियों को तथा अपने देश को लाभ नहीं पहुँचा सकते, क्योंकि वे एक अज्ञात भय के बोझ तले दबे रहते हैं। वे सुशिक्षित होते हैं; उनका अध्ययन भी विस्तृत होता है; वे सोच-विचार के अभ्यस्त होते हैं और उनके विचार भी प्रायः स्वस्थ और सुस्थित होते हैं; परन्तु वे उनकी अभिव्यक्ति का साहस केवल इसलिए नहीं करते कि कहीं उनका सुझाव उपहास का विषय न बन जाए, और उन्हें भरी सभा में लज्जित और तिरस्कृत न होना पड़े।

कुछ लोग अपनी योग्यता से परिचित होते हैं, और अपनी वास्तविकता को भी एक अंश में पहचान लेते हैं। उन्हें विश्वास होता है कि वर्षों के चिंतन और व्यवहार के बाद उन्होंने जो जीवन-सम्बंधी सिद्धांत स्थिर किए हैं, वे गलत या निराधार नहीं है, उन्हें यह भी विश्वास होता है कि यदि वे किसी समस्या पर अपने विचार किसी सभा आदि में प्रस्तुत करें, तो उन्हें निरर्थक कह कर ठुकराया भी नहीं जाएगा। परन्तु भय और भीरुता उन्हें अपने विचारा अभिव्यक्त करने से रोक देती है।

इन लोगों के जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं, जब उनका जी चाहता है कि अपनी सोच के परिणामों को निर्भयता से सब

के सामने रखदें। परन्तु भय और घबराहट उन्हें मंह खोलने का अवसर नहीं देती। तब वे अपनी इस कायरता पर मन ही मन में झुँझला उठते हैं, अपने को कोसते हैं और संकल्प करते हैं कि 'भविष्य' में वे साहस से काम लेंगे ? परन्तु जब 'भविष्य' वर्तमान बन जाता है, तब वे फिर भयग्रस्त हो जाते हैं। इस साहसहीनता का परिणाम यह होता है कि वे अपने मूल्यवान विचारों के लिए भी प्रशंसा प्राप्त करने से वंचित रहते हैं।

आपको अपनी जिन्दगी के किसी मोड़ पर इस कठिनाई का कटु अनुभव हुआ होगा कि किसी सभा में लोकतंत्र या साम्यवाद पर वाद-विवाद हो रहा है, और आप उपस्थित जनों में से किसी के अच्छे या बुरे तर्क को सुनकर मन ही मन में कह उठते हैं कि यदि दूसरा पक्ष अमुक तर्क उपस्थित करे, तो उसकी विजय निश्चित है। परन्तु किसी का ध्यान उस तर्क की ओर नहीं जाता। तब आप व्याकुल हो उठते हैं, और आप का मन चाहता है कि आप भी इस विवाद में भाग ले, और अपने विचार व्यक्त करके श्रोतागण को आश्चर्यचकित कर दें। परन्तु आपका स्वाभाविक भय आपकी इच्छा पूर्ति में बाधक हो जाता है। किसी समय आप बड़े साहस से काम लेकर बोलने का संकल्प भी कर लेते है। परन्तु मंद स्वर में 'मेरा विचार है ' कहने के पश्चात् आपकी ज़बान लड़खड़ा जाती है।

मान लीजिए, आप किसी सुप्रसिद्ध व्यापारिक संस्था में जूनियर अफ़सर हैं। प्रधान संचालक प्रति सप्ताह अफ़सरों की कांफ्रेन्स इस उद्देश्य से करता है, ताकि संस्था की बेहतरी और उन्नति की समस्याओं पर मिल कर विचार किया जाए। संचालक चाहता है कि सब अफ़सर इस सप्ताहिक सम्मेलन में अपने सुझाव प्रस्तुत करें, विशेषकर 'तरुण मस्तिष्क' वाले, ताकि उन पर विचार-विमर्श करके उनमें जो उपयोगी हों, उन्हें अपनाया

जाए। अब आप चाहें, तो अपने उन सुझावों को, जो आप मित्र मंडली में प्रायः व्यक्त करते रहते हैं, संचालक के सामने रखकर स्वयं को संस्था का हितैषी सिद्ध कर सकते हैं, और अपनी उन्नति का द्वार खोल सकते हैं। परन्तु आप इस भय से मौन रहते हैं कि कहीं आपसे बड़े अफ़सर उन्हें रद्द न कर दें, उन्हें मूर्खतापूर्ण कह कर आपको लज्जित न करें। या फिर आप का 'दुःसाहस' आपके लिए अहितकर ही सिद्ध न हो।

यदि आप अपने बीते दिनों पर दृष्टि दौड़ाएँ तो आपको किसी ऐसी घटना का स्मरण अवश्य ही आएगा, जब आपने अज्ञात भय के कारण अपनी सम्मति व्यक्त करने में संकोच किया। मैंने इस समस्या पर कई मित्रों और बुद्धिमान लोगों से विचार विनिमय किया है, और उन्होंने प्रायः इस अनुभव की पुष्टि की है कि भय और संकोच के कारण वे बहुधा अपनी योग्यता का परिचय देने का सुअवसर गँवा बैठे हैं।

मेरे एक मित्र की अवस्था चालीस के लगभग है, वह काफ़ी होशियार और चतुर व्यक्ति है, परन्तु अभी तक कोई विशेष उन्नति नहीं कर सका। कारण उसने अपनी बौद्धिक योग्यता का प्रदर्शन करने की कभी कोशिश नहीं की। वह चाहता तो ज्ञान और साहित्य की दुनिया में नाम पैदा कर सकता था। परन्तु उसने 'वीर-रीति' अर्थात सत्य भाषण और निर्भयता को अपना सिद्धांत नहीं बनाया। फलस्वरूप वह अपनी योग्यता का लाभ न उठा सका। उससे ज्यादा ख्याति तो उन लेखकों और कवियों को प्राप्त है जो विशुद्ध ज्ञान और विद्या-बुद्धि में उससे कहीं हीनतर हैं।

मैं एक सज्जन को जानता हूँ, जो सुभाषी और मधुरवक्ता हैं। आप राजनीतिक समस्याओं पर बड़े तर्कयुक्त और प्रभावी ढंग से टिप्पणी करते हैं। परन्तु वह आज तक कुशल व्याख्याता

नहीं बन सके। मैंने एक बार उन्हें एक अल्पसंख्यक समूह में भाषण करते देखा, तो बड़ी निराशा हुई। वह बोल तो रहे थे, परन्तु उन्हें सिर-पैर का होश न था। कुर्सी के सहारे खड़े थे, और बार-बार पानी माँग रहे थे। जब वह अपनी वक्तृता समाप्त कर चुके, या यों कहिए कि उस विपत्ति से मुक्त हुए, तो मैंने उन्हें बताया कि वह जब तक अपने इस बैरी—भय पर काबू नहीं पाएंगे, तब तक वह एक अच्छे वक्ता नहीं बन सकते। आप ने अपनी इस कमजोरी को माना भी, और वायदा किया कि आइन्दा दृढ़ता से काम लेंगे। आपने आज कल भय के विरुद्ध नियमित रूप से अभियान चला रखा है, परन्तु अभी तक विजय प्राप्त करने में सफल नहीं हुए। शायद इनके प्रयत्न अभी अपरिपक्व हैं।

भय और आतंक मनुष्य के लिए किस प्रकार घातक सिद्ध हो सकते हैं, इसका एक उदाहरण जापान में देखने में आया। यह सन् ५३ की घटना है। शिमोसीकी के कोची निकाशी नामक एक युवक ने केवल इस कारण आत्महत्या कर ली कि उसके निकट ऐसी दुनिया में जीवित रहना व्यर्थ था, जिसमें अणुबम के प्रयोग की सम्भावना बनी हुई है! भगवान का लाख-लाख धन्यवाद है कि दुनिया में मि० कोची के 'सहधर्मियों' की संख्या अधिक नहीं, अन्यथा मनु की संतति कब की समाप्त हो चुकी होती, क्योंकि मनुष्य मात्र के सिर पर ऐटम बम से भी ज्यादा भयानक और निश्चित ख़तरा मृत्यु के रूप में सर्वदा मंडराता रहता है।। कुछ भी हो, मि० कोची की शिक्षा-प्रद मृत्यु से इस तथ्य का ज्ञान होता है कि मनुष्य भयग्रस्त और आतंकित हो कर केवल जीवन के सुख चैन से ही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो स्वयं जीवन से ही हाथ धो बैठता है। भय के प्रभावांतर्गत अनेक पाप और कुकर्म तो होते ही हैं। सम्भवतः इसी लिए अभिनव मनो-

विज्ञान के विशेषज्ञ भय और आतंक को संक्रामक रोगों से भी ज्यादा खतरनाक समझते हैं, और इनके उन्मूलन के लिए यत्नशील रहते हैं।

यदि आप सफलता के इच्छुक हैं, और अपनी योग्यता का पूरा मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको अपने विचारों की अभिव्यक्ति में कभी संकोच न करना चाहिए, और अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का कोई अवसर हाथ से जाने न देना चाहिए। अपनी सम्मति निःसंकोच व्यक्त कीजिए, और निर्मम भय को अपना भविष्य अंधकारमय बनाने का मौका कभी न दीजिए। याद रखिए, मनुष्य होने के नाते आप इस धरती के विजेता हैं। आप जो चाहें कर सकते हैं, जिस लक्ष्य तक पहुँचना चाहें, पहुँच सकते हैं। डर, भय, विवशता और तुच्छता का प्रदर्शन आपको शोभा नहीं देता।

जब आप देखते हैं कि महत्ता का राजमुकुट केवल उन्हीं लोगों के सिर पर रखा गया, जिन्होंने अपनी रचनात्मक कल्पना शक्ति की उपज को दुनिया के सामने रखने में विलम्ब नहीं किया, तो फिर आप अपने विचारों को प्रकट करने में संकोच क्यों करते हैं? क्या सिर्फ इसलिए कि आपके विचार सुप्रसिद्ध विद्वानों के विचारों से पूर्ण या आंशिक रूप में भिन्न हैं? परन्तु यह तर्क युक्ति-संगत नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि दुनिया में जब किसी विचारक ने प्रसिद्धि प्राप्त की, तो प्रायः अपने आविष्कृत किसी ऐसे सिद्धांत के कारण, जो उसके पूर्ववर्ति विचारकों के सिद्धांतों से भिन्न था। आप जिन महान व्यक्तियों को मानवता के उद्धारक और सेवक समझते हैं, और उनकी पुण्य स्मृति में नतमस्तक हो जाते है, उनकी महत्ता का रहस्य उन की विद्या-बुद्धि से ज्यादा उनके आत्मविश्वास में था। उसी की सहायता से उन्होंने अपने विचार और सिद्धांत सबके सामने

रखे, अपने मत के प्रचार के लिए पुस्तकें लिखीं, आपत्तियों के युक्ति-युक्त उत्तर दिए, और शास्त्रार्थ किए। यदि वे भीरु होते और डर के मारे अपनी डगर से हट जाते, तो आज दुनिया न उनके नाम से परिचित होती, न उनके सिद्धाँतों से मनुष्य का कल्याण ही होता।

तनिक कल्पना कीजिए कि यदि प्रथम महायुद्ध के बाद गांधीजी अपने इस अनूठे विचार को, कि शाँतिपूर्ण उपायों द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति सम्भव है, कार्य रूप में परिणत करने के लिए अहिंसात्मक सत्याग्रह का झंडा बुलन्द न करते, तो क्या देश में इतने व्यापक पैमाने पर आन्दोलन छिड़ सकता था कि एक बार तो ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें तक हिल गईं? और यदि नेताजी सुभाष बोस अपनी इस धारणा को, कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य है, कार्यान्वित करने के लिए देश के बाहर न पहुँचते, तो क्या अभी कई वर्षों तक भारत की स्वतंत्रता सुलभ होती? दोनों अवस्थाओं में निर्णयात्मक तत्व इन महापुरुषों के विचारों की प्रकृति नहीं, बल्कि उनके व्यक्तिगत विश्वास की यह दृढ़ता थी कि उनके विचार सही हैं।

जिन विचारकों और विद्वानों की महानता को आप स्वीकार करते हैं, उनकी एक सूची बनाइए और फिर विचार-पूर्वक देखिए कि उन की महत्ता का रहस्य क्या है। आप निश्चय ही इस निष्कर्ष पर पहुचेंगे कि उनकी वास्तविक महिमा दूसरों के अनुकरण की बजाए मौलिकता में और समालोचना की बजाए रचना में निहित थी। आप आइन् स्टाइन् के प्रशंसक हैं, कार्ल मार्क्स के गुण गाते हैं, रवीन्द्रनाथ की कविता से आनन्दित होते हैं, अथवा गांधी, सुभाष और नेहरू को अपना उद्धारक मानते हैं, तो केवल इसलिए कि इन सबने पुरानी लकीर को छोड़ कर नए मार्ग तलाश किए, जीवन का नया दर्शन प्रति

पादित किया, अथवा नई परिस्थितियों के अनुसार परम्परित दर्शन में आवश्यक परिवर्तन किए, और मानव जीवन को सुख-मय और समुन्नत बनाने के लिए नए आचार-विचार आविष्कृत किए। इनमें से कोई भी अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने से पहले औसत आदमी से श्रेष्ठतर नहीं था। वे तभी ऊँचे उठे, जब उन्होंने आत्मविश्वाश की शक्ति से काम लिया, और पुरानी डगर के विरुद्ध विद्रोह का तूर्यनाद किया। इसलिए फ़ारसी मुहावरे के मुताबिक 'जो कुछ दिल में रखते हो, बाहर लाओ, और एमर्सन के इस कथन को हमेशा याद रखो कि 'ध्वनि बनो, न कि प्रतिध्वनि !"

प्रतिध्वनि बनने में कोई श्रेष्ठता नहीं है। दुनिया ऐसे लोगों से भरी पड़ी है, जो दूसरों के विचारों पर चलते हैं, दूसरों की कीर्ति पर गर्व करते हैं, परन्तु अपने मन की कहने का साहस नहीं करते। ऐसे लोग भी बहुत हैं, जो दूसरों के विचार चुराते हैं या उनकी व्याख्या करते हैं, और अपने पूज्य के विचारों से ज़रा भी विमुख होना महापाप समझते हैं। ऐसे लोग प्रायः विद्वान भी होते हैं, और विचारशील भी, परन्तु उनकी विचारशक्ति की एक सीमा नियत है, जिसको उल्लाँघने का वे अपने को अधिकारी नहीं समझते। उनके ख्याल में हमारे पूर्वज हमारे लिए जो कुछ सोच और लिख गए हैं, वही पर्याप्त है, और अनंत काल तक उसी को अपना जीवन-दर्शन बनाए रखना चाहिए। वे कहते हैं कि हमें अपने ऋषियों, महात्माओं और महापंडितों के विचारों में सामयिक आवश्यकताओं के नाम पर संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु उनसे कहा जाए कि जेट विमान और आण्विक शक्ति तो आज के मनुष्य के आविष्कार हैं, और आर्थिक समता का सिद्धांत भी तो आज की उपज है, तो इसका कोई युक्ति संगत उत्तर उनके पास नहीं होता। परन्तु अंध-

विश्वास और भेड़ चाल को त्यागने पर वे कभी तैयार नहीं होते। उनका विवेक निद्रामग्न और मस्तिष्क निष्क्रिय हो चुका है। इसलिए ऐसे लोगों से औचित्य की आशा व्यर्थ है। हाँ, उस समूह का सुधार अवश्य सम्भव है, जिसका मूल रोग पुरातन-वाद से ज्यादा कल्पित भय और अनुचित संकोच है। यह लोग भी जब अपने विचार करते हैं, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज के विचारक को निःसंदेह यह अधिकार प्राप्त है कि वह अतीत की विरासत का निरपेक्ष दृष्टि से अध्ययन करे। और यदि उसमें कहीं कोई त्रुटि या कमी पाए तो उसका निवारण करने में आनाकानी न करे। यहाँ पहुँच कर उनका जी चाहता है कि वे अपने मन में उत्पन्न होने वाले विचारों को निर्भीक होकर सबके सामने रखदें, परन्तु अज्ञात भय से मन की मन में ही रह जाती है। इस श्रेणी के लोगों की स्थिति प्रतिध्वनि से ज्यादा नहीं है। ये लोग कभी सफलता को प्राप्त नहीं कर सकते। यदि आप इस श्रेणी में खड़े होना पसन्द नहीं करते, तो एमर्सन का परामर्श शिरोधार्य कीजिए, और अपनी योग्यता पर भरोसा करते हुए अपने मनोबल, बुद्धिबल और उपायबल का प्रदर्शन कीजिए।

क्या आपने कभी कोई उत्तम पुस्तक या लेख पढ़ते हुए अनु-भव किया कि जिन विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखक का नाम समस्त विश्व में सुप्रसिद्ध है; उनसे स्वयं आपके विचार बहुत कुछ भिन्न हैं। अब यदि कोई तटस्थ आलोचक लेखक के विचारों के साथ आप के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करे, तो बड़ी सरलता के साथ आपको उक्त लेखक से बड़ा विचारक सिद्ध कर सकता है। परन्तु यही काम यदि आप स्वयं कर सकें, अर्थात अपने विचारों को संगठित कर उचित रीति से प्रकाशित कर सकें, तो वही विचार, जिन्हें आप निम्न स्तरीय और मूल्य

विहीन समझकर रद्द कर देते हैं, और उनकी अभिव्यक्ति का साहस तक नहीं करते, सुसंगठित और सुव्यक्त होकर उच्च स्तरीय और मूल्यवान हो जाएंगे। इस स्थापना का समर्थन विश्वविख्यात दार्शनिक एमर्सन इन शब्दों में करते हैं: "प्रत्येक रचनात्मक कार्य में हमें अपने धुतकारे हुए विचार मिलते हैं। हमने उन्हें तुच्छ समझकर कोई महत्व नहीं दिया था। परन्तु जब वे किसी दूसरे के विचार बनकर हमारे सामने आते हैं, तो हम आत्मविभोर होकर रह जाते हैं।" एमर्सन के विचार में कला के अमुल्य नमूने हमारे लिए इस दृष्टि से नितांत शिक्षाप्रद हैं कि वे हमें हमारी महत्ता का स्मरण दिलाते हैं। उनसे हमें यह सबक मिलता है कि मनुष्य को अपनी विचार-क्रिया के परिणामों को उपेक्षनीय नहीं समझना चाहिए। और उन्हें दुनिया के सामने पेश करने में संकोच नहीं करना चाहिए। अन्यथा कल कोई नवागंतुक उन्ही विचारों को शब्दों का रूप देकर दुनिया से उनकी कीमत वसूल कर लेगा, और हम, जो वास्तव में उन विचारों के जन्मदाता हैं, मुँह देखते रह जाएंगे।

पिछले दिनों मुझे एक शिक्षित ग्रामीण युवक ने बताया कि राज्य की राजधानी में आकर यहाँ के राजनीतिक, साहित्यिक और पत्रकारिता सम्बंधी क्षेत्रों में भाग लेने और नेताओं, लेखकों और पत्रकारों से भेंट करने के बाद मुझपर यह भेद खुला कि इन लोगों की श्रेष्ठता और विद्वता का जो आतंक मुझ पर छाया हुआ था, उसका वास्तविकता से कोई सम्बंध नहीं है। इनमें से बहुत कम उतने प्रतिभाशाली निकले, जितना कि मैं उन्हें समझता था। मुझे ज्ञात नहीं कि इस देहाती नौजवान ने किन राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और लेखकों से मिलकर अपनी धारणाओं में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि कुछ लोग स्वयं को अकारण ही हीन और नगण्य

समझते हैं, और अपने समस्तरीय लोगों से दबे रहते हैं, ।

अब यदि आपने भय से मुक्ति प्राप्त करने का संकल्प कर लिया है, और भविष्य में उपयुक्त अवसर पर आप अपने सोचे समझे मत को अभिव्यक्ति करने में संकोच नहीं करेंगे, तो आप को शीघ्र ही इस लाभदायक परिवर्तन का सुफल भी प्राप्त हो जाएगा। परन्तु इस तथ्य को न भूलिए कि विचाराभिव्यक्ति के पूर्व आपके व्यक्तित्व में वह योग्यता भी होनी चाहिए, जिसके बिना विचारों की उच्चता और मत के औचित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि आप सुशिक्षित हैं, और ज्ञान-विज्ञान की जिस शाखा में अपनी प्रतिभा दिखलाना चाहते हैं, उस पर पूरा अधिकार रखते हैं, तथा उसके सम्बंध में जितना भी उत्तम साहित्य उपलब्ध है, उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन कर चुके हैं और स्वयं भी इन विषयों पर विचार करते रहते हैं और इनके सम्बंध में कुछ कहने के लिए आपके पास है, तो फिर अपने विचारों को पूरे विश्वास के साथ प्रस्तुत करने की योग्यता आप में मौजूद है। और यदि इस योग्यता के बाद भी आप मौन धारण किए रहें, तो इसका अर्थ यह होगा कि आप अपने पर तो अत्याचार कर ही रहे हैं, अपने देश पर भी कर रहे हैं। इसके विपरीत यदि आपको अध्ययन से रुचि नहीं है और सोच विचार से आप कोसों दूर भागते हैं, तो फिर आप किसी गूढ़ विषय पर मताभिव्यक्ति न ही कीजिए तो बेहतर है, क्योंकि इस प्रकार कम से कम आपकी अयोग्यता पर पर्दा तो पड़ा रहेगा, और आप भरी सभा में उपहास का विषय तो न बनेंगे !

कोई उच्च विचार, उत्तम सुझाव अथवा अनूठी राय प्रस्तुत करने की योग्यता वर्षों के चिंतन और परिश्रम के बाद ही उपलब्ध होती है। जिस प्रकार मधुमक्खी नाना प्रकार के फूलों पर बैठती है और केवल उन्ही फूलों से रस लेती है, जिन में

मिठास होती है, और इस तरह हज़ारों फूलों से मधुकण उपलब्ध कर मधु की एक बूंद संग्रहित करती है, उसी प्रकार विचारकों को भी कोई नया विचार अथवा सिद्धांत प्रतिपादित करने के लिए वर्षों तक घोर परिश्रम करना पड़ता है। सैंकड़ों ही पुस्तकें और ग्रंथ वे पढ़ डालते हैं, और निरंतर अनुसंधान की सिरदर्दी उन्हें सहन करनी पड़ती हैं। उन तर्कों का उत्तर भी उन्हें पहले से सोच कर तैयार रखना पड़ता है, जो उनके सिद्धांत के विरुद्ध उपस्थित किए जा सकते हैं। इस प्रकार जब वे इन सब बाधाओं को पार कर लेते हैं, और उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनका विचार या सिद्धांत न केवल सही है बल्कि उसकी सत्यता को प्रदर्शित भी किया जा सकता है, तभी वे उसे दुनिया के सामने रखने का साहस करते हैं।

इसलिए यदि आप आत्मज्ञान का महत्व जान गए हैं, और अपने विचारों का प्रचार कर के अपनी योग्यता की धाक जमाना चाहते हैं, तो पहले ज्ञानोपार्जन कीजिए। स्वाध्याय को अपना नित्य नियम बनाइए। सबसे बढ़ कर स्वयं प्रकृति—जिसमें मानव-प्रकृति भी सम्मलित है—का पर्यवेक्षण बड़े ध्यान से कीजिए और सोच-विचार के अभ्यस्त बनिए। इन तैयारियों के बाद ही आप अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने की स्थिति में होगें। तब भय और संकोच के बन्धन से मुक्ति लाभ कीजिए, और दुनिया को दिखा दीजिए कि आप उन लोगों में से नहीं हैं, जिनकी कुल सम्पत्ति सुनी-सुनाई बातें या दूसरों के विचार हैं, बल्कि आप की गणना उन बौद्धिक महारथिगों में है, जो केवल अपने ही प्रवक्ता होते हैं, और दूसरों को अपने मौलिक विचारों से प्रेरणा प्रदान करते हैं।

यह जरुरी नहीं कि आप जो सुझाव पेश करें, वह शत प्रति

शत मान्य ही हो, और सभी लोग उसके समर्थक हो जाएँ। या आप अपने विचारों के प्रचारार्थ जो लेख लिखें, उस पर किसी को कटु आलोचना करने का अधिकार न हो, क्योंकि आलोचना और आक्षेप के प्रहारों से तो कोई बड़े से बड़ा विचारक, लेखक या कलाकार भी सुरक्षित नहीं रह सका परन्तु इतनी बात जरूरी है कि आलोचना से खिन्न या क्रोधित होने की बजाए लाभ उठाने में ही अधिक बुद्धिमता है। आलोचना का स्वागत करना चाहिए। इस परामर्श की आवश्यकता इसलिए अनुभव होती है कि बहुत से लोग बड़े धूम-धड़क्का, उत्साह, और साहस के साथ जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, परन्तु वे इस उग्रता का प्रदर्शन तभी तक करते हैं, जब तक कि उन्हें आपत्ति और विरोध का सामना नहीं होता। विरोधात्मक आलोचना होते ही उनका सारा जोश ठंडा पड़ जाता है, और वे कुछ ऐसे मौन और निष्क्रिय हो कर बैठ जाते हैं, जैसे उनके मुँह में जबान और अंगों में क्रिया शक्ति ही न शेष रही हो। या फिर इतने भयभीत हो जाते हैं कि लोगों से मुँह छिपाते फिरते हैं। यही विश्वास शून्यता उन्हें ले डूबती है; वे फिर शायद ही दुबारा उभार पाते हैं।

सदैव आशान्वित रहिये

"मैं असुखद परिस्थितियों के विरुद्ध बीस वर्ष तक संघर्ष करता रहा हूँ। मैंने वित्तीय कठिनाइयों से मुक्ति-लाभ के लिए नित्य दस-दस घंटे काम किया है। परन्तु मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। छल-कपट और धूर्त्तता के इस युग में सफल होना मेरे बस का रोग नहीं। मैं कुछ कर दिखाने की उत्कट भावना से जीवन के अधिकतर सुखों से वंचित रहा। परन्तु अब मैं क्लान्त हो चुका हूँ। अब मुझ में संघर्ष-शक्ति नहीं रही। अब मैं शांति और संतोष का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मैं वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट हूँ।"

ये विचार एक ग्रैजुएट के हैं, जिसे मैं काफी समय से जानता हूँ जब वह कॉलेज में पढ़ता था, तो बड़ा ही साहसी और महत्वाकांक्षी था। उसकी नस-नस में जीवन की उमंगे तरंगित थीं। वह एक मध्यमवर्गिय परिवार में पैदा हुआ था, परन्तु वह कहा करता था कि वह उन्नति के शिखर पर पहुँच कर रहेगा। प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनियों के अध्ययन से उसे विशेष रुची थी। जब वह विदेशी शासकों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करता था, तो उसकी वाणी से आग बरसती थी।

वह उच्चादर्शी और आत्मविश्वासी था। वह जिस कार्य को प्रारम्भ करता, उसे पूर्ण करके ही दम लेता था। नेपोलियन् की तरह उसके शब्दकोश में भी 'असम्भव' शब्द मौजूद नहीं

था। उसने प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न किए, जो प्रकट में उसके सामर्थ्य से बाहर थे।

वह अभी युवा और स्वस्थ है, विद्याबुद्धि से सम्पन्न है, उस का ज्ञान-क्षेत्र विस्तृत और बोध-शक्ति प्रबल है, उसमें बल-तेज का वह भंडार अब भी सुरक्षित है, जिसका संचय उसने युवावस्था में किया था। वह पहले से ज़्यादा अनुभवी और दूरदर्शी है, परन्तु अब उसके लिए जीवन में कोई आकर्षण नहीं रहा, न वह पहले जैसा उत्साह और संकल्प-शक्ति ही शेष रही है। अब वह किसी के विरुद्ध संघर्ष नहीं करना चाहता। महामहिम देश नेता बनना तो दूर रहा, अब वह किसी छोटे से समूह का पथनायक भी नहीं बनना चाहता। अब वह केवल शाँति चाहता है, विश्राम और विराग का प्रार्थी है।

"यह असम्भव है कि निर्धन परिवार में जन्म लेने वाला मुझ जैसा व्यक्ति किसी क्रांतिकारी आन्दोलन का प्रवर्त्तक बन सके। श्रेष्ठता और नेतृत्व के राजमुकुट निर्धनों के लिए नहीं हैं, 'जवाहरलाल' जैसे धनिक-पुत्रों के भाग्य में ही लिखे गए हैं। मैं 'जवाहर' से ज्यादा काम कर सकता हूँ। मैं देश व जाति की सेवा तथा समाज सुधार और राष्ट्रोन्नति की योजनाएँ सोचने में अधिक निपुण हूँ। परन्तु दरिद्रता मुझे कुछ नहीं करने देती। सच बात यह है कि दरिद्र-नारायण का उपासक कोई महान कार्य कर ही नहीं सकता।"

ये विचार किसी अशिक्षित नवयुवक अथवा मामूली पढ़े-लिखे व्यक्ति के नहीं हैं, बल्कि एक ऐसे विद्वान के हैं, जो अपने निकट स्वयं को 'विद्यासागर' समझते हैं। मैं उनकी इस विचार-धारा का परिचय पाकर आश्चर्यचकित रह गया।

तथ्य यह है कि विगत अर्धशताब्दी में ऐसे कितने ही व्यक्तियों ने क्रांतिकारी आन्दोलनों की नींव रखी है, तथा राष्ट्री का

नेतृत्व-भार संभाला है, जिनका जन्म अत्यंत ही गरीब घराने में हुआ था, और जिन्हें किसी सामान्य पाठशाला में भी शिक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था । जब मैंने एक दर्जन से ज्यादा ऐसे विश्रुत व्यक्तियों के नाम गिनवा दिए, जो गरीब माता-पिता की 'भाग्यहीन संतान' होने पर भी उच्चतम पद को प्राप्त हुए, तो वह अपने दावे से हट तो गए, परन्तु मुझे उनकी आँखों में कोई ऐसी आशा अथवा वाणी में विश्वास की झलक दिखाई न दी, जिससे यह अनुमान हो सकता कि अब वह भी सफलता-प्राप्ति के लिए संघर्ष करेंगे, अथवा देश की प्रगति के लिए किसी नए उद्यम का प्रारम्भ करगे। वह एक वृहत् व्यापारिक संस्था से सम्बध हैं, और उच्च वेतन पाने के अलावा अपनी कुछ सम्पत्ति भी रखते हैं। परन्तु वह आज भी यही कहते हैं कि यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाएँ, और उन्हें 'कहीं से' कुछ आर्थिक सहायता मिल जाए, तो वह बहुत कुछ कर सकते हैं ! परन्तु वह किसी प्रकार का खतरा मोल लेने को तैयार नहीं हैं !

इस श्रेणी के लोग सदैव परिस्थितियों के अनुकूल होने की प्रतीक्षा करते रहते हैं, और अपनी वर्तमान अवस्था से असंतुष्ट होने पर भी 'संतुष्ट' हैं, क्योंकि वे कोई खतरा मोल लेने को तैयार नहीं हैं। वे केवल क्रांति और परिवर्तन की बातें ही करते हैं। इसलिए नहीं कि वे स्वयं क्रांति का झंडा बुलन्द करने का इरादा रखते हैं, बल्कि इसलिए कि कोई दूसरा इस ओखली में अपना सिर दे दे, और जब सब कुछ हो चुके, तो वे परिवर्तन के सुपरिणामों में भागीदार बनने के लिए आ उपस्थित हों।

ये लोग जीवन की बाज़ी हार चुके हैं। ये अपनी योग्यता की मुंह-मांगी कीमत वसूल नहीं कर सके, और अब अपनी आकांक्षाओं का खून होते देख रहे हैं, पर कुछ कर नहीं पाते।

इसलिए नहीं कि भाग्य ने उनका साथ देने से इन्कार कर दिया, या समय ही उनका विरोध करने पर कटिबद्ध हो गया, बल्कि इसलिए कि वे अपनी सब से मूल्यवान वस्तु-अपनी महासम्पत्ति-आशा को त्याग बैठे। जब तक उन्हें सफलता की आशा थी, वे कठिनाइयों का धैर्यपूर्वक मुकाबला करते रहे; विपत्तियों के झंझावात में भी उनके कदम नहीं डगमगाए। परन्तु आशा-दीप के बुझते ही उन्हें अपने चतुर्दिक घोर अंधकार दीखने लगा। वे सहज ही में पथ-भ्रष्ट हो गए। उनका देह-दुर्ग अभी तक सुदृढ़ है, परन्तु उसके भीतर की आत्म-रूपी रक्षक सेना निर्बल और निर्जीव हो चुकी है। उनके जीवन का सब से बड़ा दुःखांत कांड यही है कि अब वे उस शक्ति से काम नहीं ले सकते, जो सब सफलताओं की कुंजी और आधार है।

यदि आप जीना चाहते हैं और सफलता की अभिलाषा रखते हैं, तो 'अविश्वास' और निराशा को अपने पास फटकने न दीजिए। कभी हार न मानिए। याद रखिए, हमारा जीवन हमारे विचारों का प्रतिबिंब होता है। यदि हमने दुःख, निराशा और पराजय के विचारों को अपने मन व मस्तिष्क पर अधिकार जमाने का मौका दिया, तो हम सचमुच दुःख और निराशा की मूर्ति बन कर रह जाएंगे।

"जैसे हम सोचते हैं, वैसे ही हम बन जाते हैं" यह एक प्रसिद्ध उक्ति है, और इसकी सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता। एमर्सन कहते हैं कि मनुष्य वही कुछ बनता है, जो कि उसके विचार होते हैं। इसमें संदेह नहीं कि विचारों में मानवी जीवन को बनाने अथवा बिगाड़ने की महान शक्ति है। इसलिए निराशा, विश्वासहीनता, आत्मतुच्छता और आत्मतिरस्कार के विचारों से दूर का भी सम्बंध न रखिए। और परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही विकट और विपदपूर्ण क्यों न हो जाएं, अपने हृदय

में आशा-दीप को कभी बुझने न दीजिए। हमेशा आशान्वित रहिए और अपने को सदैव सफल समझिए।

सफलता के विचार चुम्बुकीय प्रभाव रखते हैं। वे विरोधी परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाने में सहायक होते हैं। वे आप का साहस बढ़ाते हैं, आप की क्रिया-शक्ति की वृद्धि करते हैं। और इस प्रकार सफलता की मंजिल को निकटतर लाते हैं।

दुनिया में अधिकतर लोगों की असफलता का मुख्य कारण यह होता है कि उनके विचारों और कृत्यों में संगति नहीं होती। वे अपने व्यवसाए में सफलता-प्राप्ति के लिए पूंजी और श्रम को तो आवश्यक मानते हैं, परन्तु अपनी विचार-शक्ति और इच्छा-शक्ति से कुछ अधिक काम नहीं लेते। वे व्यापारिक संस्था तो स्थापित कर देते हैं, परन्तु उसे सफलतापूर्वक चलाने का विश्वास उन्हें नहीं होता। दूसरे शब्दों में वे पपनी सम्पूर्ण शक्ति-शारीरिक मानसिक एवं भावनात्मक-सफलता-प्राप्ति के उद्देश्य की ओर केन्द्रित नहीं करते। परिणाम यह होता है कि वे असफल हो जाते हैं अथवा आंशिक सफलता ही प्राप्त कर पाते हैं।

मैं एक प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक को जानता हूँ, जो पाँचवीं श्रेणी के विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ दिलाने का विशेषज्ञ माना जाता है। वह प्रतिवर्ष चार-पाँच छात्रों को वृति परीक्षा के लिए तैयार करता है, और प्रायः प्रति वर्ष ही उसके पढ़ाए हुए दो-तीन परीक्षार्थी वृत्ति-प्राप्ति में सफल हो जाते हैं। एक बार मैंने उससे इस आश्चर्यजनक कार्य-दक्षता का रहस्य पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि वह अन्य अध्यापकों से किसी रूप में भी अधिक निपुण अथवा योग्य नहीं है। बात केवल इतनी है कि उसे अपने पर पूर्ण विश्वास है, और वह सदैव आशान्वित रहता है। उसने कहा कि मैं यह कल्पना भी

नहीं कर सकता कि मेरे प्रयत्न कभी विफल भी हो सकते हैं। इस विश्वास के साथ मैं स्वयं परिश्रम करता हूँ, और ठीक वैसी ही तैयारी करता हूँ, जैसे कि स्वयं मुझे छात्रवृत्ति प्राप्त करनी हो। ऐसी ही तैयारी मेरे छात्रों की भी हो जाती है। मेरी सफलता का दूसरा रहस्य यह है कि मैं अपने आत्मविश्वास से अपने छात्रों में भी यह विश्वास पैदा कर देता हूँ कि वे सफल हो कर रहेंगे।

यह 'लौह-विश्वास', यह अटल आत्मबल मनुष्य में कब पैदा होता है? जब वह सदैव आशान्वित रहे, जब उसकी मानसिक दुनिया में आशा, आनन्द और आत्मनिष्ठा के दीप सर्वदा प्रज्वलित रहें, और जब वह नित्यप्रति कल्याण, सफलता और महत्ता के ही स्वप्न देखें। उसे हेमन्तकाल के बाद बसंतऋतु के आगमन का विश्वास रहना चाहिए, और ग्लैडस्टोन के शब्दों में यह कहते रहना चाहिए कि 'जीवन व्यर्थ का परिश्रम नहीं है, बल्कि एक शिष्टता-युक्त और भव्यशाली अभियान है।"

आप भी किसी कार्य, व्यवसाय या प्रतियोगिता में भाग लेने से पहले सफलता की कल्पना कीजिए; सफलता के विचारों को अपनी चेतना का अंग बना लीजिए, यहाँ तक कि वे आपके अचेतन मन में घर कर जाएं। जब आप अपने लक्ष्य की कल्पना में सर्वदा लीन रहने लगेंगे, तो आपके लिए लक्ष्य तक पहुँचना सहज हो जाएगा, इतना सहज कि आप स्वयं हैरान रह जाएंगे।

इस दुनिया के रंग-मंच पर ऐसे अगणित लोग प्रकट होते हैं, जो 'बी० ए० हुए, नौकर हुए पेंशन् मिली, फिर मर गए' की प्रसिद्ध पंक्ति को चरितार्थ करते हुए पैदा होते हैं, नाम मात्र को शिक्षा प्राप्त करते हैं, कोई छोटी-मोटी नौकरी या व्यापार कर लेते हैं, और जब मौत की घड़ी आ जाती है, तो चुपचाप चल बसते हैं। ऐसे ही लोगों की दयनीय दशा पर खेद प्रकट

करते हुए कवि ने कहा है—"ये लोग अपने गीतों समेत गहरी नींद सो जाते हैं !" अर्थात वह जब तक जीते हैं, अपनी योग्यताओं का उपयोग नहीं करते, और मरते समय उन्हें साथ ही ले जाते हैं। दुनिया को न उनके आने की सूचना मिलती है, न जाने का समाचार। उनका जन्म लेना और मरना समान रूप से महत्वहीन घटनाएँ हैं।

इन लोगों का यह खेदजनक अंत क्यों होता है ? सम्भवतः इस लिए कि वे जीवन में जीने के उत्साह से प्रेरित नहीं होते। इनका जीवन-सिद्धांत प्रायः यह होता है कि 'चलो तुम उधर को, जिधर की हवा हो।' वे कठिनाइयों और विपत्तियों के सामने छाती तान कर खड़े नहीं होते। उन्हें अपनी रचनात्मक शक्ति और आविष्कार-क्षमता पर विश्वास नहीं होता इसलिए उनमें मौलिकता और नवीनता के प्रति स्वाभाविक प्रवृति का अभाव रहता है। उनकी इस जड़ता के कारण एक आशावादी कवि ने 'जिन्दा लाशों से' उनकी उपमा दी है।

ये लोग विवशताग्रस्ता, असहाय और निर्बल इसलिए नहीं हैं कि स्वयं स्रष्टा ने ही उन्हें शक्ति-सफूर्ति से विहीन रखा है, बल्कि असल कारण यह है कि वे जीने की प्रबल उत्कंठा नहीं रखते। जीने की उमंग के बिना जीवन व्यतीत करना मनु की प्रबुद्ध और स्वाभिमानी संतान को शोभा नहीं देता। इसलिए यह आपका मनुष्योचित कर्तव्य है कि आप जीने की गरमाहट को कभी मंद न होने दें।

इंगलैंड के एक प्रसिद्ध प्रधानमंत्री मि० रैमज़े मैकडानलैंड की जीवन संगिनी जब मृत्यु शय्या पर पड़ी थी, तब उसने अपने अंतिम क्षणों में पति को पास बुलाकर कहा कि आप मेरे मरने के बाद हमारे बच्चों के दिल में जीवन के प्रति अभिरुचि और उससे आनन्दित होने की प्रबल इच्छा को जीवित रखें। इसके

लिए स्वयं आप को अपने बुढ़ापे और अकेलेपन के बावजूद आनन्दोल्लास के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। उस बुद्धि सम्पन्न महिला को मालूम था कि वृद्धावस्था में, विशेषकर जब जीवन-साथी भी छूट जाए, जीवन का उत्साह शिथिल हो जाता है। इसी लिए उसने वृद्ध पति से यह अनुरोध किया, ताकि उनकी संतान जीने की कला से अनभिज्ञ न रह जाए।

मार्शल फ़ोश् का कथन है कि उत्साह मनुष्य का सब से उपयोगी अस्त्र है। 'स्टार जॉर्डन् लिखता है "जब तक मनुष्य में जीवन की गरमाहट और जीने की प्रबल उत्सुकता मौजूद है, वह जवान है।" विलियम्सन् कहते हैं "सफल लोग विद्या-बुद्धि में उन लोगों से श्रेष्ठ नहीं होते, जिनके भाग्य में केवल विफलता ही लिखी होती है। परन्तु पूर्वोक्त दल के लोगों में जीवित रहने और सफल होने की अभिलाषा अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। वास्तविकता यह है कि भावना और उत्साह के बल पर सामान्य योग्यता रखने वाले व्यक्ति भी तीक्ष्ण बुद्धि वालों से अधिक सफल सिद्ध होते हैं। स्वयं हमारे देश में उर्दू कविता की यह पंक्तियाँ लोकोक्ति का स्थान प्राप्त कर गई हैं कि, "जिन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है, मुर्दा दिल क्या ख़ाक जिया करते हैं!"

कुछ लोग मामूली कठिनाइयों से घबरा कर अपना काम छोड़ बैठते हैं, और किसी दूसरे काम की तलाश में निकल खड़े होते हैं। वे इस तबदीली का कारण यह बतलाते हैं कि पहला काम उनके स्वभाव और रुचि के अनुकूल नहीं था। परन्तु इस प्रकार की तबदीली यदि बार-बार की जाए, तो फिर किसी व्यवसाय या कलाकौशल में पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। और पूर्णता के बिना सफलता की कल्पना करना भी कठिन है। फिर यह अस्थिरता और चंचल वृत्ति आत्मविश्वास की हानि करती है। ऐसे लोग जब भी किसी कार्य को प्रारम्भ करते हैं,

तो उनके मन में यह शंका बैठी रहती है कि सम्भव है इस काम में भी सिद्धि न मिले। इस प्रकार वे किसी भी काम को पूरे विश्वास और सफलता की आशा के साथ शुरु नहीं कर पाते। परिणाम यह होता है कि वे उम्र भर भटकते ही रहते हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि मनुष्य अपने जीवन-लक्ष्य को बड़ी सावधानी के साथ सोच-विचार कर युवावस्था में ही निश्चित कर ले, और उसकी प्राप्ति के लिए तन मन से जुट जाए। अवश्य इसका यह अर्थ नहीं कि कोई व्यवसाए या सेवा क्षेत्र एक बार अपना लेने के बाद उस में परिवर्तन की गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए। यदि अनुभव से सिद्ध हो जाए कि कोई व्यवसाए विशेष पर्याप्त लाभ-दायक नहीं है, और उसमें उन्नति और सफलता भी कुछ अनिवार्य कारणों से असम्भव प्रायः है, तो उसका परित्याग कर कोई अन्य व्यापार आरम्भ करना बुद्धिमता के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। परन्तु चेष्टा यही होनी चाहिए कि जीवन में क्या करना है, इसका एक बार ही निश्चित रूप से निर्धारिण कर लिया जाए। कार्य-क्षेत्र के निरंतर परिवर्तन से मनुष्य की निर्णय-शक्ति का ह्रास होता है, और आत्मविश्वास को अकथनीय हानि पहुँचती है।

जब आप अपनी रुचि और ध्येय के अनुसार किसी एक कार्य विशेष को अपना कर उसमें तनमय हो जाएंगे, तो उस से एक बड़ा लाभ यह भी होगा कि आपको मानसिक उलझनों से छुटकारा मिल जाएगा, और आप अपनी सारी शक्ति और ध्यान को एक दिशा विशेष में केन्द्रित कर उत्साहपूर्वक कार्य कर सकेंगे। इस अवस्था में आपका मन भी आपके शारीरिक परिश्रम का साथ देगा। और परिणामतः आप शीघ्र ही सफलता के द्वार पर पहुँच जाएंगे।

बहुधा मनुष्य केवल इसलिए निराशाग्रस्त हो जाता है कि

वह किसी क्षणिक विफलता के कारण अपनी अच्छाइयों और योग्यताओं की भूल कर केवल कमज़ोरियों को ही देखने लगता है। इस प्रकार की हीन भावना आत्मविश्वास को डाँवाडोल कर देती है। यदि आप इस रोग से आक्रांत हैं, और सर्वदा अपनी कमज़ोरियों को ही स्मरण करते हैं, तो तत्काल इसका उपचार कीजिए। जो बातें आपके उद्देश्य से मेल नहीं खातीं, सर्वदा उन्ही की कल्पना में डूबे न रहिए, बल्कि उन बातों को ज्यादा अपने ध्यान में रखिए जो आपके पक्ष में हैं, उनकी एक सूची बनाइए, उन्हें कंठस्थ कर लीजिए, और फिर उन्ही के सम्बन्ध में अधिक सोचिए। उनका विकास कीजिए, उन्हें अधिक प्रखर और प्रभावी बनाइए। उदाहरण के लिए यदि आपमें कवि बनने की अपेक्षा निबंध-लेखक बनने की योग्यता अधिक है, तो आप अपने मस्तिष्क से कविता की सनक को तत्काल निकाल दीजिए और अपनी इस 'अयोग्यता' पर एक आँसू भी न बहाइए। इसकी बजाए आप अपना सारा ध्यान एक निबंध लेखक बनने पर केन्द्रित कर दीजिए। इस प्रकार आप विफलता की आशंकाओं की बजाए सफलता की उज्ज्वल सम्भावनाओं को अपने समक्ष रख-कर सदैव आशान्वित रह सकेंगे।

उत्साहवर्द्धक और आशाप्रद विचार-धारा आध्यात्मिक सम्पन्नता की भूमिका ही नहीं, बल्कि भौतिक सफलता की आधार-शिला भी है। आप अपने कल्पना-जगत को आशा और उल्लास के फूलों से सजाएँ, तो व्यावहारिक रूप से भी आप सफल और समृद्ध जीवन बिताने के योग्य बन सकेंगे।

दुनिया में ऐसे लोगों की संख्या अपार है जो अति हीन अवस्था में पालित पोषित होने पर भी केवल अपने ऊँचे सपनों और आशाओं के बल पर बड़े से बड़े पद तक पहुंचने में सफल हुए। आप भी हमेशा उन्नति का स्वप्न देखा करें। आप भी

पूर्ण विश्वास के साथ कहा करें कि आपका भविष्य भव्य और महान है। आप अपने भविष्य के सम्बन्ध में हमेशा आशान्वित रहें और स्थिति-चित्र के उज्ज्वल पक्ष को ही अधिक दृष्टिगत रखें। यदि आप इन बातों का अभ्यास कर लें, तो फिर आप के लिए अपने लक्ष्य की प्राप्ति निश्चत और अनिवार्य हो जाएगी। फिर आपको दुनिया की कोई शक्ति सफलता, महत्ता और प्रसिद्धि प्राप्त करने से वंचित नहीं रख सकेगी।

और यदि किसी समय संयोगवश परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाएँ, और आप असुखद अवस्था में जीवन व्यतीत करने पर बाध्य हों, तो उस समय आप अपने हृदय मंदिर में आशा-दीप को बुझने न दें, और विश्वास रखें, कि आपकी यह हीनता अथवा दुर्दशा सामयिक हैं। और वह दिन दूर नहीं, जब सब बाधाओं विपत्तियों के बादल छंट जाएंगे और आप सफलता के मार्ग पर पुनः अग्रसर होंगे। यह दृष्टिकोण, यह मनोवृत्ति और यह विचार-धारा आप के जीवन का निर्माण करने में बड़ी सहायक सिद्ध होगी, और आपका भविष्य सचमुच बड़ा उज्ज्वल और वैभवशाली होगा।

विश्वास का पुनर्निर्माण

"मैं समाप्त हो चुका हूँ। मेरा सर्वनाश हो चुका है। मैं पन्द्रह वर्षों से जीवन-संघर्ष में संलग्न हूँ। परन्तु अभी तक सफलता के दर्शन नहीं कर पाया। मेरा हर उपाय विफल होता है; मेरी हर योजना निष्फल रहती है। मेरा कोई हितैषी नहीं; कोई मित्र नहीं, कोई साथी नहीं। निर्दय काल ने मुझे कुचल कर रख दिया है। मेरे लिए जीवन का कोई सुख शेष नहीं रहा। मैं संसार का सर्वाधिक पीड़ित और अत्याचारित व्यक्ति हूँ। मैं अपना सब कुछ खो चुका हूँ।" यह सब कह कर वह सामने की कुर्सी पर लुढ़क सा गया। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

"सब कुछ ?" मैंने प्रश्न किया।

"जी हाँ, सब कुछ" उसने उत्तर दिया। "मेरी उम्र पैंतीस वर्ष है। परन्तु मैं बेरोज़गार हूँ। मुझे कहीं काम नहीं मिलता। मेरे पास इतने पैसे भी नहीं हैं कि कोई छोटी-मोटी दूकान खोल कर बैठ जाऊँ। मैं अपने बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं कर सका। फिर मुझ सा अभागा और कौन होगा। अब मैं अपनी दशा सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकता।"

मैंने उससे सहानुभूति प्रकट की। उस समय इससे ज्यादा और कर भी क्या सकता था। उसने वास्तव में बड़े कष्ट सहे थे। वह एक लम्बे समय से बेरोज़गार था। कोई काम मिलता, तो चार दिन आराम से गुजरते। परन्तु बेरोज़गारी उसे फिर

आ दबोचती थी। मुझे जब कभी उससे मिलने का संयोग हुआ। उसे यही रोना रोते पाया कि वह बेरोज़गार है। वह घर से निकल कर किसी चायख़ाने में जा बैठता। परन्तु जानकार लोग उसका दुःख बटाने की बजाए उल्टा बाल की खाल निकालते। इस से उसे और भी लज्जित होना पड़ता है। आखिर उसने घर से निकलना ही छोड़ दिया। क्योंकि—

मुसीबत का इक-हक से अहवाल कहना,
मुसीबत पै है यह मुसीबत ज्यादा।

इन सब कारणों से उस समय मैंने यही उचित समझा कि उसे लम्बे-चौड़े उपदेश देकर और ज्यादा परेशान न करूँ। परन्तु कुछ दिनों के बाद मैंने उस से इस समस्या पर विस्तार के साथ बातचीत की। उसे बताया कि परिस्थितियों का सुधार असाध्य नहीं है। यदि वह निराशा और अविश्वास का परित्याग कर दे, तो अब भी अपनी बिगड़ी बना सकता है। वह सुशिक्षित है, और उसका स्वास्थ्य अभी भी ईर्षा-योग्य है। कोई कारण नहीं कि उसे कहीं अच्छी नौकरी न मिले। मैंने कुछ मित्रों के नाम बताए, जो उसकी सहायता कर सकते थे। इस प्रकार दिलासा देकर जब मैंने अनुभव किया कि उसके मन का बोझ कुछ कम हो चला है, तो मैंने उसे समझाया कि वह 'समाप्त हो चुकने और सर्वस्व खो बैठने के विचारों को यहीं समाप्त कर दे, और उनके स्थान पर अपने मन व मस्तिष्क को आशा, साहस और उत्साह के विचारों से भर ले। अपने पर, अपने बाहुबल पर और ऐश्वरीय सहायता पर विश्वास करे। अंधकार-मय अतीत को सदा के लिए भूल जाए, और आज से नया जीवन आरम्भ करे।

मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब उसने मेरा धन्यवाद किया और वायदा किया कि वह नए सिरे से जीवन को सार्थक

बनाने का प्रयास करेगा। और प्रायः तीन वर्ष बाद जब उसने मुझे बताया कि उसकी विपत्तियों का अंत हो चुका है, और अब वह सुख-शांति का जीवन व्यतीत कर रहा है, तो मेरी खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

इसी प्रकार की एक घटना का वर्णन अमरीका के प्रसिद्ध मनोविज्ञान-वेत्ता डा० पील ने अपनी एक पुस्तक में किया है। वह बतलाते हैं कि किस प्रकार एक बावन-वर्षीय निराशाग्रस्त वृद्ध व्यक्ति के मन में आशा का अंकुर लगाया गया, जिस के बाद उसने फिर से जीना आरम्भ करके अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाया। डा० पील के देशवासी सच में भाग्यवान हैं कि उन्हें शारीरिक रोगों के अलावा मानसिक व्याधियों के निराकरण की सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। हमारे देश में भी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के महत्व का अनुभव किया जाना चाहिए। ऐसे लोगों की उपयुक्त सहायता की व्यवस्था होनो चाहिए, जो दीर्घ काल तक कठिनाइयों और विपत्तियों के प्रहार सहन करते-करते जीवन से निराश और विरक्त हो चुके हैं। अवश्य इस का अर्थ यह नहीं कि आर्थिक सहायता का कोई मूल्य ही नहीं है, जो लोग सामान्य आर्थिक सहायता से अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं उन्हें यदि कहीं से थोड़ी सी सहायता भी उपलब्ध न हो, तो निःसंदेह बड़ी करुणात्मक बात है। परन्तु इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे लोगों में अधिकतर केवल प्रोत्साहन और उचित पथदर्शन से ही अपनी बिगड़ी बना सकते हैं। इस दुनिया में लाखों ही ऐसे लोग हैं, जो केवल हमारी सहानुभूति और संवेदना के ही अपेक्षी हैं, और जिन्हें आर्थिक सहायता के बिना भी संघर्ष करने पर उद्यत किया जा सकता है।

मुझे पिछले साल कालेज के एक विद्यार्थी का पत्र मिला

वह यक्ष्मा जैसा भयंकर रोग से ग्रस्त था, और बम्बई के निकट किसी बड़े अस्पताल में चिकित्सा करा रहा था। उसने अपने पत्र में लिखा, "मैं करीब एक साल से इस अस्पताल में चिकत्साधीन हूँ। मैं जीवन की ओर से प्रायः निराश हो चुका था। परन्तु आप की पुस्तक "जीना सीखो" ने मुझे नया जीवन प्रदान किया। अब मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा रोग असाध्य नहीं है। अब मैं जीवन के प्रति निराश नहीं रहा, और क्रमशः स्वास्थ्य लाभ कर रहा हूँ।" इस नवयुवक की तरह हमारे देश के लाखों व्यक्तियों को केवल हमारी सहानुभूति की ही आवश्यकता है। उन्हें यदि बताया जा सके कि व्यर्थ की चिंताओं से कैसे मुक्ति लाभ की जा सकती है, तो वे पुनः अपने जीवन का निर्माण करने पर तत्पर हो सकते हैं। मैं न मनोवैज्ञानिक चिकत्सक हूँ और न मंनोविज्ञान विशेषज्ञ, परन्तु व्यवहारिक जीवन के शिक्षालय से मैंने जो पाठ ग्रहण किया है, उसके आधार पर पूर्ण विश्वास के साथ यह कह सकता हूँ कि इस दुनिया में अगणित ऐसे लोग बसते हैं, जिन्हें कुछ सहानुभूति कुछ प्रोत्साहन, कुछ आशाप्रद शब्दों और प्रेम भरे वाक्यों की धन से भी अधिक आवश्यकता रहती है। इन उपायों से उनके घाव भर सकते हैं, उनके मन की कली फिर से खिल सकती है, और वे पुनः संघर्ष के लिए तैयार हो सकते हैं।

ऐसे लोगों की सब से बड़ी कठिनाई उनकी विश्वासहीनता है। वे समय की विपत्तियों का सामना करते-करते क्लांत हो गए हैं, और अब नई कठिनाइयों को देखकर विचलित हो उठते हैं। यही लोग युवावस्था में दृढ़ता और साहस की मूर्ति थे। परन्तु एक-दो बार की असफलता ने ही उन्हें साहसहीन बना दिया। वे अनुभव करने लगे कि सफलता उनके भाग्य में ही

नहीं है, इसलिए संघर्ष करना व्यर्थ है। अब उन्हें स्वयं पर दया आती है, और वह अपनी दुर्दशा पर केवल आँसू ही बहाते हैं। अब यदि उन्हें किसी लाभप्रद व्यापार में पूंजी लगाने को कहा जाए, अथवा साझेदारी का प्रस्ताव किया जाए, तो वह कानों को हाथ लगाते हैं और कहते हैं कि जब पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों के प्रयत्नों का कोई फल नहीं मिला, तो अब इतने विलम्ब से जीवन के पुनर्निर्माण की चेष्टा मूर्खता नहीं, तो और क्या है। जब जवानी में ही सफलता नहीं मिली, तो अब इस 'बुढ़ापे' में क्या कर सकते हैं, और कैसे अपना जीवन बना सकते हैं।

इस अभिशाप से मुक्ति का एक मात्र उपाय है आत्मविश्वास का पूर्नानिर्माण। उन्हें बताया जाए कि खोया हुआ विश्वास पुनः प्राप्त किया जा सकता है। और असफलता को सफलता में परिवर्तित किया जा सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञों ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया है कि यदि आप इस रोग से ग्रस्त हैं, अर्थात एक-आध बार की असफलता से ही इतने भयभीत हो गए हैं कि अब अपना जीवन बनाने का प्रयास तो दूर रहा, वर्तमान दशा के सुधार के लिए भी कुछ करने को तैयार नहीं; यदि आप अपने व्यवसाय को फिर से उन्नति की ओर ले जाने की कोशिश को अनावश्यक और अहितकारक समझते हैं; अपने सोए हुए भाग्य को जगाने के विचार मात्र से ही भयभीत हो उठते है, और स्वयं को 'समाप्त' 'भाग्यहीन' और 'सर्वहारा' समझते हैं, तो अकाल मृत्यु के मुंह में जाने और अपने लिए खुद गढ़ा खोदने की बजाए किसी मनोवैज्ञानिक चिकित्सक से तुरंत परामर्श गहण कीजिए। और उसकी सहायता से आत्मविश्वास की पुनप्राप्ति के बाद जीवन के पुर्नानिर्माण में जुट जाइए।

इसे असम्भव न समझिए, इसे कठिन न जानिए। आप

खोया हुआ विश्वास पुनः प्राप्त कर सकते हैं, और अपने पर विश्वास करके अपनी क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। आप जो कुछ गत दस, पन्द्रह या बीस वर्षों के संघर्ष से प्राप्त नहीं कर सके, उसे आगामी दो-चार वर्षों के प्रयास से ही प्राप्त कर सकते हैं। आपने आज से पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व जो स्वप्न देखा था, यदि वह आपके निरंतर प्रयत्नों से भी यथार्थ नहीं बन सका, तो निराश होने का कोई कारण नहीं है। आपके प्रयत्न विफल नहीं होंगे, आपने पन्द्रह-बीस वर्षों में जो अनुभव प्राप्त किया है, वह अकारथ नहीं जाएगा।

सफलता के मंदिर में प्रवेश के लिए कोई समय नियत नहीं है, न उम्र की कोई कैद है। कुछ लोगों को युवावस्था में ही सफलता मिल जाती है, तो कुछ को वृद्धावस्था में यह सौभाग्य प्राप्त होता है। कुछ लोगों के प्रयत्न शीघ्र ही अपना प्रभाव दिखाते हैं, तो कुछ की बड़े विलम्ब से। तो फिर निराश क्यों हों? हो सकता है कि आपके साथी अपने लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी होंगे, जिन्होंने यह यात्रा आपके बाद आरम्भ की थी। उन्हें सफल देख कर आपका पिछड़ेपन पर दुःखी होना स्वाभाविक है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आपकी बारी ही नहीं आएगी। यदि आप उन लोगों को देखते हैं, जो आप को पीछे छोड़ कर सफलता-शिखर पर पहुँच चुके हैं, तो तनिक उन लोगों को भी देखिए, जो आप से भी पीछे हैं, परन्तु इसके बावजूद पूरी तन्मयता और धैर्य के साथ कदम बढ़ा रहे हैं। उन्ही की तरह आप भी निर्भय हो कर यात्रा जारी रखिए, और आत्मविश्वास को किसी अवस्था में भी हाथ से जाने न दीजिए।

आत्मविश्वास नवयुवकों के लिए मशाल का काम देता है, वृद्धों के लिए लाठी का। यह ऐसा धन है, जिसे कोई आप से

छीन नहीं सकता। इसका संग्रह आप के प्राणवान हृदय और ज्ञानवान मस्तिष्क में रहता है। इसका उपयोग करना छोड़ दिया जाए, तो इसकी स्थिति उस धन-कोष जैसी हो जाती है, जो भूमि में दबा पड़ा हो, और जब तक उसे बाहर न निकाला जाए, उसका कुछ भी मूल्य नहीं होता। इस लिए साहस न हारिए ; अपने इस धन को बाहर निकालिए, और इससे काम लेना शुरू कर दीजिए।

यदि आप आत्मविश्वास की पुनर्स्थापना चाहते हैं, और अपनी दबी हुई शक्ति को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, तो कठिनाइयों और विपत्तियों को भयंकर समझना छोड़ दीजिए। उनसे बिल्कुल प्रभावित न होइये। कठिनाइयों को हमेशा इस दृष्टि से देखना चाहिए कि उन्हें दूर करने का क्या उपाय हो सकता है। और फिर पूर्ण विश्वास के साथ उन्हें दूर करने में लग जाएं। उन्हें अपने से अधिक सबल समझने की भूल तो कभी न कीजिए।

कठिनाइयों से निपटने का सही तरीका यह है उन पर काबू पाने का उपाय किया जाए, न कि राई का पहाड़ बना कर बैठ जाया जाए। यदि आप पहले से ही यह सोचे बैठे हैं, कि अमुक संस्था में नौकरी की कोशिश बेकार है, क्योंकि वहां का व्यवस्थापक भाई-भतीजा वाद के सिवा और किसी सिद्धांत को नहीं मानता, या अमुक जगह आवेदन-पत्र देना फजूल है, क्योंकि वहाँ का प्रधाल संचालक स्वयं मूर्ख और मूर्खों का गुणग्राहक है, तो आप ही बताइए कि घर बैठे इस प्रकार के निर्णय कर लेने के बाद आप की बेरोज़गारी की समस्या कैसे हल हो सकती है ? फिर आपको बेरोज़गारी की शिकायत करने का क्या हक है ?

इस समस्या पर जरा गम्भीरता से विचार कीजिए, और

पता लगाइए कि कहीं आप की कठिनाइयाँ भी कल्पना की उपज मात्र तो नहीं हैं। यदि आप चिंतन और विश्लेषण के बाद उसी निष्कर्ष पर पहुँचे, जिसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है, तो यह निष्कर्ष स्वयं में आप के रोग का उपचार सिद्ध होगा। एक बार जब आपको विश्वास हो जाएगा कि आप की कठिनाइयाँ कल्पति हैं, तो आप स्वयंमेव उनसे भयभीत होना छोड़ देंगे।

एक पाँच वर्षीय बच्ची प्रायः नित्य ही रात के समय स्वप्न में एक भेड़िए को अपनी ओर आता देख कर डर से जाग पड़ती थी, और रोना-चिल्लाना शुरू कर देती थी। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया कि वह सपने के भेड़िए को वास्तविक न समझे। परन्तु अबोध बालिका पर उपदेश का प्रभाव न पड़ा। आखिर वे उसे एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास ले गए। चिकित्सक ने सब विवरण सुनकर बच्ची से भेड़िए की सूरत शक्ल और दूसरी विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किए और उसके बाद कहा, "अच्छा, तो यह वही भेड़िया है, जो मेरे पास भी आया करता था। शुरु-शुरु में मैं भी इसे देखकर बहुत डरा करता था। परन्तु मुझे शीघ्र ही पता चल गया कि यह भेड़िया दरअसल घर से निकाला हुआ एक गरीब कुत्ता है। अब यह बेचारा बच्चों से खेलने के लिए सपने में उनके पास आ जाता है। इसके बाद जब भी मेरे पास आया, मैंने उसे पुचकारा, और प्यार किया। तब से वह मेरा दोस्त बन गया। आइन्दा जब वह तुम्हारे पास आए, तो तुम भी उसे प्यार करना। फिर देखना वह कैसे दुम हिला-हिला कर तुम्हारे पाँव चाटता है।" डाक्टर की इस बात से बच्ची खुश हो कर हँसने लगी।

उस रात में जब वह अपने छोटे से बिछौने पर सोई, तो उसकी माँ करीब ही एक कुर्सी बिछाकर बैठ गई, ताकि यदि

बच्ची सपना देख कर रोने लगे, तो उसे सांत्वना दे सके। परन्तु उस रात में बच्ची सुख की नींद सोती रही। केवल एक बार कुछ क्षणों के लिए उसके चेहरे पर घबराहट के लक्षण प्रकट हुए। परन्तु शीघ्र ही उसके होंठों पर मुस्कान खेलने लगी इससे ज़ाहिर था कि भेड़िया उसके सपने में आया तो सही, परन्तु बच्ची ने उसके साथ दोस्ती कर ली।

आपभी विचार कीजिए कि आपकी 'कठिनाइयों के भेड़िए' भी कहीं सपने के भेड़िए तो नहीं हैं। यदि वे काल्पनिक ही हैं, तो भी आप उनसे दोस्ती कर लीजिए; उनसे डरना छोड़ दीजिए। वे न तो भयंकर हैं, और न आप को हानि पहुँचाना चाहते हैं। बहुत सी कठिनाइयाँ तो आपकी दोस्त बन कर बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए, जिन व्यक्तियों को आप किसी युक्ति संगत तर्क के बिना अपना शत्रु समझ रहे हैं, उनमें से कोई आप के प्रति शत्रुता की कोई भावना नहीं रखता। आपभी अपने मन को उनके प्रति विरोधात्मक विचारों से साफ़ कीजिए। फिर आप यह देख कर हैरान रह जाएंगे कि आपके अधिकतर काल्पनिक शत्रु वास्तव में आपका अहित चाहने वाले नहीं हैं। उन के सम्बन्ध में जितनी भी बातें आप के कान में भरी गई हैं, वे सब मनघड़त कहानियाँ और झूठ का पुलन्दा है। आपका एक कल्पित शत्रु स्वयं आपका 'जीवन' है, जिसे देख-देख कर आप भयभीत हो रहे हैं, और अकारण ही चीख़ते-चिल्लाते हैं। अपने इस जीवन को अपना मित्र समझिए, उसके उज्ज्वल पक्ष पर अधिक दृष्टिपात कीजिए। इस दुनिया में सुखों की अपार राशि विद्यमान है। इससे आप लाभांवित हो मकते हैं, बशर्ते कि आप अपनी काल्पनिक कठिनाइयों से भयभीत होना छोड़ दें, और जीवन के साथ मित्रता स्थापित

करके राई का पहाड़ बनाने की आदत का परित्याग कर दें। फिर 'कठिनाइयों के भेड़िए' आपके दोस्त बन सकते हैं, और उस बच्ची की तरह आपके होंटों पर भी मुस्कान खेल सकती है।

आत्मविश्वास का एक शत्रु आत्मग्लानि और अपने पर दया का भाव है। जब आप देखते हैं कि आप अपनी आशाओं के अनुसार उन्नति नहीं कर सके, या वर्षों की चेष्टा के बाद भी दरिद्रता और अभाव के बन्धनों से मुक्त नहीं हो सके, तो आप अपने को पीड़ित, अत्याचारित और दुर्दशा-ग्रस्त समझने लगते हैं, और एकांत में अपनी दयनीय अवस्था पर आँसू बहाते हैं। यह 'आत्मकरुणा आपके लिए घातक है, क्योंकि यह आपकी क्रियाशक्ति का अंत कर देती है, और आप को इस योग्य नहीं रहने देती कि आप अपनी कठिनाइयों पर काबू पाने की कोई सफल योजना बना सकें। यह एक प्रकट तथ्य है कि जो व्यक्ति सोचने समझने और कदम उठाने की शक्ति खो बैठता है, वह अपनी दशा कभी नहीं सुधार सकता। इस लिए आप अपने पर दया करने की आदत न डालिए। जो भी कठिनाइयाँ हों, धैर्य और साहस के साथ उनका मुकाबला कीजिए। और आखिर दम तक लड़ने और विजयी होने का संकल्प बनाए रखिए।

आयरलैंड के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता डी वलेरा के सम्बंध में बतलाया जाता है कि जब उसे स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान में बंदी बनाकर कारागार में ले जाया गया, तो उसने दरवाज़े पर क्षण भर के लिए रुक कर अपनी पतलून की जेब से पाइप निकाला और उसे दीवार पर दे मारा। इस पर कारागार के अधिकारी ने कहा कि इसकी क्या जरूरत थी। आपके धुम्रपान पर प्रतिबंध लगाने का तो हमें ख्याल तक नहीं है। डी वलेरा ने उत्तर दिया कि आप लोग यह जानकर कि मैं बहुत ज्यादा

तम्बाकु पीता हूँ, मेरी इस कमज़ोरी से फ़ायदा उठा सकते थे। इसलिए मैं आपको इसका मौका ही नहीं देना चाहता।

स्वर्गीय मौलाना आज़ाद के सम्बंध में भी एक ऐसी ही कथा है कि १९४२ में जब आपको दूसरे राष्ट्रीय नेताओं के साथ बंदी बनाकर अहमदनगर के किले में रखा गया, तो आपने अधिकारियों के कहने पर अपनी आवश्यकताओं की सूची में बहुत सी किताबों के नाम लिख दिए, जो आप अपने कलकत्ते के मकान से मँगवाना चाहते थे। परन्तु इसके बाद आपको ख्याल आया कि किताबों के विषय में आपकी कमज़ोरी से विदेशी शासक अनुचित लाभ भी उठा सकते हैं, और किसी भी समय किताबों की सपलाई बन्द करके आपको परेशान कर सकते हैं। यह सोचकर आपने अपनी सूची से सब किताबों के नाम काट दिए। इस प्रकार आपने अपने आत्मविश्वास और आत्मसम्मान दोनों की रक्षा की।

आत्मविश्वास को बनाए रखने का यही तरीका है कि अपनी कमज़ोरियों पर वीरतापूर्वक काबू पाया जाए, और अपने मन व मस्तिष्क को निर्बलता, पतन और पराजय के विचारों से दूर रखा जाए। विरोधात्मक विचारों के होते आप कोई भी योजना तैयार नहीं कर सकते। और यदि कोई कार्यक्रम बना भी लें, तो उसे क्रियांवित नहीं कर सकते। इसलिए यदि आप वास्तव में सफलता चाहते हैं, तो सबसे पहले ऐसे सब विचारों का अंत कीजिए, जो आपको अपनी ही दृष्टि में तुच्छ और तिरस्कृत बनाते हैं। ऐसा करने के लिए आप ठोस और क्रियात्मक विचारों का सहारा लीजिए। अर्थात जब असफलता या पराजय के विचार सिर उठाएँ, तो आप तत्काल उनपर जवाबी आक्रमण करें, और "मैं कर सकता हूँ, "मैं सफल होकर रहूँगा" "सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" आदि वाक्यों को बार-बार दुहरा कर

उनके स्वरूप को अपने मानस पटल पर अंकित कर दीजिए। इन वाक्यों को अपना स्थायी मित्र बनाइए, इन से याराना गाँठिए। फिर देखिए, आपकी योजनाएँ किस तरह सिरे चढ़ती है, और आप कितनी सहजता से सफलता प्राप्त करते हैं।

अपने मन में अपना एक ऐसा चित्र बनाइए, जिसमें आप को सफल और सम्मानित दिखाया गया हो। यदि आप इस चित्र को सदैव अपनी कल्पना में रखें और उसे किसी हालत में भी अपनी आंतरिक दृष्टि से ओझल न होने दें, तो फिर स्वयं आपकी कल्पना-शक्ति उसे और स्पष्ट और प्रखर बना देगी। मानवी कल्पना-शक्ति की यह एक विशेषता है कि जिस प्रकार का चित्र उसके द्वारा निर्मित होता है, बाह्य-शक्तियाँ उसे यथार्थ रूप देने के लिए क्रियशील हो जाती हैं। इस लिए प्रकट परिस्थितियाँ चाहें कितनी ही विकट और प्रतिकूल क्यों न हों, आप अपने 'आदर्श चित्र' को सदैव अपने सामने रखें। भारत के एक बहुत बड़े साप्ताहिक पत्र के सम्पादक ने मुझे यह दिलचस्प बात सुनाई कि उन्होंने अपने पत्र की प्रकाशन संख्या एक लाख से भी ऊपर ले जाने में जो आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है, उसका रहस्य 'एक लाख' का 'कल्पना-चित्र' है। उन्होंने पहले ही दिन से, अर्थात जिस दिन अपना पत्र आरम्भ किया, अपनी प्रकाशन-संख्या एक लाख मानी। दस वर्षों तक वह इस काल्पनिक संख्या को यथार्थ मानते रहे,यहाँ तक कि आज वह सचमुच यथार्थ ही है।

आप भी अपने को सदैव उस स्थिति में देखें, जिसमें होने की प्रबल इच्छा आपके मन में है। इस कल्पना-चित्र को आप कभी मिटने न दें, और उसे यथार्थ बनाने का प्रयास निरतंर जारी रखें। जब आप सफलता के चित्र को—अपने आदर्श-चित्र को—सदैव अपने सामने रखेंगे, तो आपकी सफलता बिल्कुल निश्चित हो जाएगी।

निर्णय-शक्ति

ब्रिटेन के प्रसिद्ध पत्र कार मि० ब्युर्ले बैक्स्टर अपने साप्ताहिक पत्र में अमरीकन राजनीतिज्ञ हैरल्ड् स्टेसन के साथ अपनी एक भेंट का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि तीन वर्ष पूर्व वह जल-पोत 'कुइन् मेरी' में यात्रा कर रहे थे कि रात के खाने पर उन की मुलाकात एक अमरीकन युवक से हुई। वह अमरीका और ब्रिटेन के सम्बन्धों पर उससे विचार विनिमय करने लगे। मि० बैक्स्टर ने यह जताने के लिए कि द्वितीय महायुद्ध में अमरीका की सहायता के लिए उसके बहुत कृतज्ञ हैं, कहा कि ब्रटेन के लोग अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति मि० रूज़वेल्ट को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उन्होंने मित्र राष्ट्रों को समयक सहायता प्रदान करके विनाश से बचा लिया। परन्तु उस अमरीकन युवक ने इस श्रद्धांजली पर प्रसन्नता प्रकट करने की बजाए विरिक्त-भाव से कहा, "मगर मैं मि० रूज़वेल्ट को विलम्ब का दोषी मानता हूँ!"

इस पर मि० बैक्स्टर ने तनिक सावधानी के साथ प्रश्न किया, "तो आपके विचार में सहायता देने का उचित समय कौंसा था?

"म्यूनिख़ का समय! (अर्थात जब ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मि० चैम्बरलैन हिटलर से मिलने म्यूनिख गए और शांति के नाम पर चेकोस्लोवाकिया का बलिदान कर आए)।

"अगर मि० रूज़वेल्ट उसी समय भूमध्य सागर में एक बेड़ा भेजकर घोषणा कर देते कि अमरीका ब्रिटेन और फ्रांस की सहायता करेगा, तो हिटलर के होश ठिकाने आ जाते, और वह पोलैंड पर आक्रमण करने से पहले सौ बार सोचता। शायद युद्ध ही न छिड़ता" मि० बैंकस्टर लिखते हैं कि मैं उस अमरीकन युवक की बुद्धिमता से बहुत प्रभावित हुआ। इसमें संदेहे नहीं कि यदि मि० स्टेसन् के मतानुसार अमरीका म्यूनिख के समय ही यूरोप की सहायता करने की घोषणा कर देता, तो सम्भवतः हिटलर को विश्व-शांति नष्ट करने का साहस न होता। इस दृष्टि से अमरीका का समयानुकूल निर्णय न कर सकना द्वितीय महायुद्ध का एक बड़ा कारण बना।

निर्णय करने में विलम्ब जहां सामुहिक रूप से मानवता के लिए हानिकर सिद्ध होता है, वहां व्यक्तिगत रूप से भी घातक हो सकता है। दुनिया में बहुत से लोग अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने और अपने प्रयत्नों का पुरस्कार पाने में केवल इसलिए असफल रह जाते हैं कि वह दुविधा और आलस्य के रोगी होते हैं। ऐसा बुद्धिमान और योग्य युवक उन्नति के शिखर पर कैसे पहुंच सकता है, जो किसी विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण होने के बाद एक दीर्घकाल तक यही निर्णय नहीं कर पाता कि उसका जीवनलक्ष्य क्या होना चाहिए, और उसकी प्राप्तिके लिए उसे किस जीवन-क्षेत्र को अपना संघर्ष-स्थल बनाना चाहिए। इस दोष का दायित्व स्वाभाविक भीरुता पर डाला जाए, अथवा हमारी शिक्षा-प्रणाली पर, परन्तु यह है तथ्य कि हमारे देश के अधिकतर नवयुवक जीवन क्षेत्र में प्रवेश करते समय निर्णय शक्ति से काम नहीं लेते। जब वे शिक्षालयों से उत्तीर्ण होते हैं, तो उनका सर्वप्रथम लक्ष्य किसी नौकरी तक सीमित होता है। मिलने वाली नौकरी उन्नति का साधन बन

सकती है या नहीं ? उस नौकरी से उनकी स्वाभाविक रुचि है या नहीं ? इन प्रश्नों पर वे विचार करने का कष्ट नहीं करते, न उनके माता-पिता ही इस दिशा में उनका मार्गदर्शन करते हैं। अवश्य इसमें हमारे अधिकतर लोगों की आर्थिक विवशता का भी बहुत हाथ है, और ब्रिटिशकालीन परम्पराओं का भी परन्तु इस विवशता और इन परम्पराओं का इलाज भी तो यही है कि हमारे युवक निर्दिष्ट दिशा में सोचना आरम्भ करें। इस समय परिस्थिति क्या है ? एक साइंस ग्रेजुएट अखबार में अनुवादक की आवश्यकता का विज्ञापन पढ़ता है, और आवेदन पत्र भेज देता है। वह एक क्षण के लिए भी यह नहीं सोचता कि अनुवाद का कार्यक्षेत्र उसकी उन्नति का सोपान बन सकेगा या नहीं। वह उस परिश्रम और आर्थिक व्यय को भी भूल जाता है, जो उसने विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के लिए वहन किया।

अवश्य इस परिस्थिति का एक कारण हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और उसके बने रहने में सत्ताधिकारियों का विशेष हित भी है। इस व्यवस्था के रहते बेरोज़गारी का पूर्ण उन्मूलन असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए हमारे युवकों में आत्मविश्वास और निर्णय शक्ति होनी चाहिए। केवल योग्यता ही प्रर्याप्त नहीं है, उससे काम लेने का साहस भी होना चाहिए। यदि हमारे युवक अपने पर विश्वास करते हुए अपने भविष्य की योजना तैयार करें, और फिर अपने निर्णय के अनुसार जीवन-संग्राम में भाग लें, तो उन्हें कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना तो अवश्य होगा, परन्तु वे अंततः सफल भी जरूर होंगे। भारत जैसे देश में, जहाँ कोरे ग्रेजुएटों की अपेक्षा वैज्ञानिकों, डाक्टरों, इंजीनियरों और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की अधिक आवश्यकता है, कॉलेज की साधारण शिक्षा पर पैसा,

समय और श्रम का अपव्यय क्यों सहन किया जाता है, यह समझ से बाहर है। यदि अधिकाधिक भारतीय नवयुवक हस्त-कौशल और उद्योग में प्रवृत्त हों, तो कोई कारण नहीं कि देश में सब लोगों के लिए काम के पर्याप्त साधन अस्तित्व में न आएँ।

जो लोग समय पर ठीक निर्णय करने के महत्व से अनभिज्ञ होते हैं, वे महत्ता के अधिकारी कभी नहीं बनते। दुनिया के कितने ही सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों, आविष्कारकों और विद्वानों को अपने कार्य-क्षेत्र का चुनाव इसी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में करना पड़ा था, जैसी कि आज हमारे युवक समुदाए के सामने हैं। परन्तु मानवता के ये महान उपकारक कठिनाइयों को देख कर भयभीत नहीं हुए थे। वे बड़े से बड़ा मूल्य चुका कर भी अपनी योग्यता का परिचय देने पर दृढ़ संकल्प रहे। और जब उन्हें विश्वास हो गया कि वे एक विशेष कार्य-क्षेत्र में उन्नति और प्रसिद्धि प्राप्त करने के अलावा मनुष्य मात्र के हितकारक भी बन सकते हैं, तो उन्होंने अपनी सारी शक्ति और सारा ध्यान उसी क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में लगा दिया।

महान विचारक कैसे अस्तित्व में आते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए एक विद्वान लिखता है, "उन्हें चुनौती दीजिए, उनके आगे कठिन और विकट समस्याएँ रखिए", परन्तु इस चुनौती को केवल वही लोग स्वीकार कर सकते हैं, जो साहसी हों, और अपने वास्तविक महत्व से परिचित होने के अलावा अपनी योग्यता को प्रकट करने के लिए हर मुसीबत झेलने को तैयार हों।

मनुष्य इस धरती को स्वर्ग कैसे बना सकता है? रोग, महामारी, अभाव और दरिद्रता से कैसे मुक्ति-लाभ कर सकता है? उस पवित्र कर्तव्य को कैसे निभा सकता है, जो प्रबुद्ध जीव

होने के नाते उसको सौंपा गया है ? यह चुनौती हम सब के लिए है। और हम सबका कर्त्तव्य है कि मानवता के गौरव और उत्कर्ष के लिए इस चुनौती को स्वीकार करें।

यदि आप ऐसे लोगों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें, जिन्हें अपनी क्रियाशक्ति पर विश्वास नहीं है, तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगे कि उन्होंने अभी अपने ज्ञानात्मक जीवन का प्रारम्भ ही नहीं किया। वे आजीवन दुविधा और संकोच में पड़े रहते हैं। उनके सामने जब कोई कठिन समस्या आती है, तो वे पलायन मार्ग ढूँढने लगते हैं। वे स्वयं सोच-विचार नहीं करते, बल्कि अबोध बालकों की तरह दूसरों के मत और परामर्श के अपेक्षी रहते हैं। और यदि स्वयं कोई निश्चय कर भी लेते हैं, तो उसे बराबर संदेह की दृष्टि से देखते हैं, यहाँ तक कि मुसीबतों का पहाड़ सिर पर आ गिरता है। उस समय उनकी दशा दर्शनीय होती है। उन्हें न तो अपनी इस योग्यता पर विश्वास होता है कि वे इन मुसीबतों का मुकाबला कर सकेंगे, और न वे पहले से यह सोच रखते हैं कि समय पर मुसीबतों का सामना कैसे करेंगे। परिणाम यह होता है कि वे मुश्किल को देखते ही हथियार डाल देते हैं। इस दल के लोग अपने बचाव के लिए हाथ-पाँव मारते भी हैं, तो सफल नहीं होते, क्योंकि अव्यवस्थित और दिशाविहीन प्रयत्न प्रायः निष्फल ही होते हैं।

मैं एक सुशिक्षित युवक को जानता हूँ, जिसका जीवन विभिन्न क्षेत्रों में असफलताओं की एक शृंखला है। वह सुबोध और साहसी है, परिश्रमी और महत्वाकांक्षी भी है। वह कई वर्षों से बड़ी दृढ़ता के साथ समय के उलट-फेर का मुकाबला कर रहा है। परन्तु जीवन में सफलता उसे आज तक नहीं मिली। कारण, वह सदैव दुविधाग्रस्त रहा। उसने अपने वयस्क जीवन का प्रारम्भ करने से पहले अपने लिए कोई स्पष्ट और

यत्नसाध्य कार्यक्रम निर्धारित नहीं किया।

शुरू में उसने एक अर्ध सरकारी विभाग में नौकरी की। उसका विचार था कि इस विभाग से सम्बद्ध रह कर वह अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। परन्तु कुछ वर्षों के बाद उसने यह विचार बदल दिया और एक दूसरे क्षेत्र में नौकर हो गया। उसके बाद उसने लगभग एक दर्जन विभिन्न प्रकार की नौकरियाँ की। अवश्य हर बार अपना कार्य रूप बदलते समय उसके सामने अपना भविष्य ही होता था। परन्तु जो व्यक्ति दस वर्षों में भी यह निश्चय न कर सके कि उसकी प्रवृत्ति किस ओर है, अर्थात वह किस मार्ग से चलकर अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है, वह जीवन में सफल कैसे हो सकता है।

यदि हमें अपरिमित समय तक जीने की सुविधा प्राप्त होती तो यह अनिश्चितता सम्भवतः इतनी हानिकर न होती। परन्तु मुश्किल यह है कि हमें एक सीमित समय तक ही जीने का अवसर प्राप्त है। और इस अल्प अवधि में हमारे प्रयत्न तभी सफल हो सकते हैं, जब हम एक-एक क्षण को मूल्यवान जाने, और समय के उपयोग में उदारता दिखलाने की मूर्खता न करें। बार-बार अपना कार्य-क्षेत्र बदलने वाला व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में कुशल कैसे हो सकता है, और कार्य-कुशलता के बिना सफलता कैसे प्राप्त कर सकता है? यही कारण है कि स्थान-स्थान भटकने वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य तक मुश्किल ही से पहुंच पाता है। अपने अल्प जीवन में हम मनोवांछित सफलता तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब हम अल्पावस्था में ही अपने जीवन-पथ का निश्चय करके दृढ़ता पूर्वक उस पर चलते रहें।

मैंने कार्य-क्षेत्र, व्यापार या नौकरी में बार-बार के परिवर्तन का जो विरोध किया है, उस से मेरा आशय यह नहीं कि एक बार जो मार्ग अपना लिया जाए, वह गलत या उन्नति में बाधक

सिद्ध होने पर भी बदला न जाए। मेरा निवेदन केवल इतना है कि अकारण ही अथवा भावावेश में आकर एक काम का परित्याग कर दूसरे को अपनाने में कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। यदि आप किसी विभाग या कार्यालय में कुछ वर्षों तक मेहनत और ईमानदारी से काम करने के बाद यह अनुभव करें कि वहाँ आप की उन्नति के पर्याप्त अवसर नहीं है, तो उस काम को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। परन्तु ऐसा निर्णय सामयिक अथवा भावनात्मक मात्र नहीं होना चाहिए, बल्कि सब तथ्यों पर अच्छी तरह विचार करने के बाद किया जाना चाहिए। ताकि आप नए क्षेत्र में पूरे विश्वास के साथ पदार्पण करें, और दृढ़ संकल्प हो कर उसमें निपुणता प्राप्त करने का प्रयास करें। यह न हो, कि जब कभी आपको किसी नए स्थान अथवा पद पर दस बीस रुपया ज्यादा की पेशकश कर दी जाए, आप अपनी प्रवृत्ति या रुची आदि बातों को भूलकर तुरन्त तबादले के लिए तैयार हो जाएँ।

'नित्य जीवन का मनोविज्ञान' नामक पुस्तक का रचयिता अर्न्स्ट डचेज़ इस समस्या का प्रतिपादन करते हुए लिखता है कि जो व्यक्ति निर्णय-शक्ति नहीं रखता, उसके सामने कोई बड़ी समस्या आते ही वह व्यग्र हो उठता है, और वह व्यग्रता उसकी रही सही निर्णय शक्ति को भी समाप्त कर देती है। यही लेखक आगे चलकर लिखता है कि हम अपने जीवन के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण निर्णय करते समय उन वाह्य तथ्यों और घटनाओं को तो दृष्टिगत रखते हैं, जो हमारे पक्ष या विपक्ष में होती हैं, परन्तु हम अपनी आंतरिक मानसिक परिस्थितियों अथवा मनोभावों की बहुधा उपेक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए हम नया जीवन आरम्भ करने के निश्चय से इस लिए बचना चाहते हैं कि कहीं हमारी दशा पहले से भी हीनतर न हो जाए,

कहीं नया वातावरण वर्तमान वातावरण से भी ज्यादा कष्ट कर और हानिप्रद सिद्ध न हो। प्रकट है कि यह 'संदेह भाव' वास्तविकताओं पर आधारित नहीं होते। इसलिए नया मार्ग अपनाने का निश्चय करते समय हमारे सामने यह सिद्धांत होना चाहिए कि हमें नए मार्ग के उचित होने का पूर्ण विश्वास है या नहीं। तात्पर्य यह कि हम जो भी निर्णय करें, पूरे सोच विचार, सावधानी और विश्वास के साथ करें, और एक बार दृढ़ निश्चय कर लेने के बाद दुविधा, संदेह और शंका को अपने पास फटकने न दें। नए संघर्ष में सफल होने का केवल यही एक उपाय है।

यदि मैंने मित्रों के परामर्श के विरुद्ध केवल अपने विवेक के अनुसार कोई निर्णय किया, और दुर्भाग्यवश वह निर्णय मेरे लिए हानिकारक सिद्ध हुआ, तो मैं किसी को मुँह दिखाने योग्य नहीं रह जाऊँगा—यह भय, मित्रों द्वारा उपहासित और समाज द्वारा तिरस्कृत होने का भय सफलता का शत्रु ही नहीं, सुख, शांति और मन की स्थिरता के लिए भी घातक है। सामाजिक मर्यादाओं और परम्पराओं का सम्मान तथा मित्र-मंडली के सामान्य मत का आदर मानव का कर्तव्य है। परन्तु जहाँ तक व्यक्तिगत उन्नति के लिए संघर्ष करने अथवा अपने किसी क्षेत्र विशेष का चुनाव करने का प्रश्न है, इसमें स्वयं अपने सिवा किसी और के मत या भावनाओं को अत्याधिक महत्व नहीं देना चाहिए। अवश्य अपने जीवन-पथ का निर्धारण करते समय आप मित्रों, सम्बंधियों से परामर्श कर सकते हैं, और सम्बधित पुस्तकों आदि से भी लाभ उठा सकते हैं, परन्तु अंतिम निर्णय स्वयं आपको ही करना चाहिए। यह बात पहले कही जा चुकी है कि जो कुछ भी आप हैं, अथवा

कर सकते हैं, उसका पूर्ण ज्ञान केवल आपको ही हो सकता है। मित्रगण अथवा साधारण समाज आपके व्यक्तित्व और योग्यता से पूर्णतः परिचित नहीं हो सकते। वे केवल आपके किसी एक पक्ष विशेष को ही देख पाते हैं। आपकी वास्तविकता केवल आप पर ही प्रकट हो सकती है। इस लिए आप स्वयं निर्णय करने में केवल इस कारण कभी संकोच न कीजिए कि मित्रगण क्या कहेंगे, अथवा इस निर्णय पर साधारण समाज की क्या प्रतिक्रिया होगी। यदि आपने अपनों या परायों की टिप्पणी के डर से निर्णय करने में आनाकानी की, तो आपकी प्रगति का मार्ग सदैव अवरुद्ध रहेगा।

आखिर आप भूल-चूक से इतने भयभीत क्यों हैं? भूल-चूक किससे नहीं होती, और कौन व्यक्ति है, जो ईमानदारी के साथ यह दावा कर सके कि उसका कोई निर्णय कभी गलत सिद्ध नहीं हुआ? फिर आप ग़लती के डर से अपनी नींद क्यों हराम कर रहे हैं? इसके अलावा क्या आप इस बात को अनुभव नहीं करते कि 'दुविधा और अनिश्चितता, त्रुटिपूर्ण निर्णय से भी ज्यादा अनिष्ठकर है, और अनावश्यक संकोच जीवन को असह्य बना देता है? फैसला न कर पाने अथवा बार-बार फ़ैसला बदलने से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है, वह थक जाता है। इससे उसका हर नया फ़ैसला पहले से भी ज्यादा ग़लत और ख़तरनाक हो जाता है, यहाँ तक कि ऐसी स्थिति आजाती है कि फ़ैसला करने का सार्मथ्य ही शेष नहीं रह जाता। इसी लिए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मि० बासल कोलिस कहते हैं कि जीवन के सुखों का लाभ उठाना है, तो निर्णयशक्ति से समुचित काम लीजिए। कठिन समस्याओं में भी निर्णय करने से जी न चुराइए, और निर्णय इतनी सावधानी के साथ कीजिए कि उसमें परिवर्तन की आवश्यकता ही न पड़े। यदि प्रयोग से निर्णय ग़लत भी

सिद्ध हो, तो परवाह न कीजिए। अगली बार उससे लाभ उठाइए, और अधिक सुस्थित निर्णय कीजिए।

भारत के एक प्रसिद्ध न्यायाधीश का कथन है कि मैं बहुत सोच-समझकर निर्णय देता हूँ। परन्तु एक बार निर्णयोच्चारण के बाद फिर यह सोचने नहीं बैठ जाता कि मेरा निर्णय सही था या गलत। यदि हम यही सोचते रहें, तो जीना मुश्किल हो जाए।

आप कह सकते हैं कि जहाँ तक निर्णय शक्ति से काम लेने, समयानूकूल और उचित निर्णय करने तथा आलस्य और संकोच को त्यागने का सम्बंध है, आप मुझसे सहमत हैं, और आइन्दा इन नियमों का पालन करने की चेष्टा करेंगे। परन्तु ठीक समय पर निर्णय करने या न करने का आत्मविश्वास से क्या सम्बंध है? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर मैं दे चुका हूँ। यदि आप बिना सोचे-समझे निर्णय करने के अभ्यस्त हैं, यदि आप अपने फ़ैसलों को बार-बार बदलना बुरा नहीं समझते, और यदि आप मित्रों के उलाहनों के डर से निर्णय करने में संकोच करते हैं, तो यह आदत आपको अपनी योग्यता पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं रहने देगी। और जब आप फैसला करने की शक्ति ही खो बैठेंगे, तो आपको विश्वास हो जाएगा कि आप किसी भी विषय में अपना मार्ग निर्धारित करने के योग्य नहीं हैं। और जब आप अपना मार्ग तक निश्चित नहीं कर सकेंगे, तो उस पर चलने की क्षमता आप में कहाँ से आएगी? आप एक-एक पग पर दूसरों का अवलम्बन लेना चाहेंगे। इस प्रकार परतंत्र होकर आप कहाँ तक जा सकेंगे, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं है कि जो लोग अपनी योग्यता और प्रतिभा का यथोचित पुरस्कार प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें समयक और सही निर्णय करने का अभ्यास करना चाहिए, ताकि वे आत्मविश्वासी बन सकें, और जीवन-संघर्ष में पुरुषार्थ कर सकें।

आज में रहिये

"मैं आँगन में गुड़िया लेकर खेल रही थी । गुड़िया मेरे हाथ से छूट कर ज़मीन पर गिर पड़ी और उसके दो टुकड़े हो गए । मुझे गुड़िया के टूटने का बेहद दुःख हुआ, और मैं रोती हुई अपने कमरे में चली गई । मेरी माँ ने मेरे रोने की आवाज़ सुनी, तो वह तत्काल मेरे पास आई । उन्होंने मुझे सांत्वना दी और प्यार करते हुए कहा, "प्यारी बेटिया । गुड़िया के टूटने पर रोने का समय आज नहीं है। कल शायद तुम्हें इस घटना पर आँसू बहाने का अवकाश मिल जाए। लेकिन आज— आज तो हमें गुड़िया की मरम्मत करनी होगी, उसे फिर से जोड़ना होगा । और यह काम रोने-धोने से नहीं हो सकता । इसके लिए हमें थोड़ी सी गोंद, अकल और मेहनत से काम लेने की जरूरत है ।"

ये उत्साहप्रद शब्द सुन कर मेरे आँसू थम गए । और जब हम ने गुड़िया के दोनों टुकड़ों को फिर जोड़ लिया, तो मेरा शोक भी समाप्त हो गया। "प्रसिद्ध अभिनेत्री देविका रानी अपने बचपन की इस घटना का वर्णन करने के बाद लिखती हैं कि मैंने अपनी माँ से जो कुछ सीखा, उसे कभी भूल न सकी । मुझे जब कभी किसी आकस्मिक विपत्ति का सामना हुआ, अथवा कोई दुःखदायक घटना घटी, तो मैंने तत्काल ही अपने से कहा "कल शायद दुखी होने और अपने दुर्भाग्य पर आंसू

बहाने का अवकाश मिल जाए, लेकिन आज—आज तो मुझे इस विपत्ति का प्रतिकार करना है और इस दुर्घटना को सहन करने का उपाय ढूँढ़ना है।" इन शब्दों के चमत्कार से मेरा साहस पुनर्जीवित हो उठता था

यदि हम इस विदुषी की तरह अतीत की भूलों और असफलताओं पर रोने-धोने और अपने को कोसने का काम कल पर उठा रखें, और कुछ करने की सोचें, कोई ऐसी योजना बनाएँ, जिसे क्रियांवित करने से हमारी क्षति-पूर्ति हो सकती हो तो, हमें बात-बात पर रोने और जीवन से ऊब जाने का अवकाश शायद ही मिले।

"जीवन एक जंजाल है, "यह दुनिया दुःखों का घर है, "जीवन निर्वाह एक महान कष्ट है" आदि वचन अक्सर लोगों की ज़बान पर रहते हैं। और जब हम मनुष्यों को असहाय और विवश पाते हैं, तो हमें इन वाक्यों के सत्य होने में संदेह कैसे हो सकता है? परन्तु इस में भी संदेह नहीं कि इन विपत्तियों का मुकाबला करने और उन पर विजयी होने का सीधा मार्ग अपने पर विश्वास करके उनका अंत करने की चेष्टा करना है। और यह केवल तभी सम्भव है, जब हम 'आज में रहें, अर्थात आज ही कठिनाइयों पर काबू पाने का प्रयत्न करें। यदि हम इस सिद्धांत को अर्थात आज का काम आज करने के नियम को अपना जीवन दर्शन बना लें, तो फिर हम शायद ही दुनिया को 'दुःखों का घर' कहें, अथवा सुख की खोज के मारे-मारे फिरने पर विवश हों।

"आज हमें काम करना है। हाँ, कल—शायद कल हमें अपनी विवशता और असहायता पर आँसू बहाने का अवकाश मिल जाए"—इसे हम अपना जीवन-दर्शन बना लें, तो निःसंदेह हमें कल भी दुःखी और शोकग्रस्त होने का अवसर नहीं मिलेगा

क्योंकि जब हम कल सुबह नींद से जागे, तो वह 'कल' भी 'आज' में परिणत हो चुकी होगी। और आजके लिए तो हम शपथबद्ध हैं ही कि इसे कुछ करने और व्यस्त रहने का दिन समझेंगे। इस प्रकार हम परेशानियों से सदा के लिए अपना पिंड छुड़ा सकते हैं, कठिनाइयों का मुकाबला करने और आघात सहने के अभ्यस्त बन सकते हैं, और अपनी क्षति-पूर्ति के लिए संघर्षशील हो सकते हैं।

'आज' के जीवन सिद्धांत को अपनाने में कभी त्रुटि नहीं करनी चाहिए। यह सिद्धांत 'कल' की विपत्तियों को हमेशा हम से दूर रखता है। जब कभी हम पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़े, कोई भारी आर्थिक हानि सहन करनी पड़े, अथवा किसी विकट समस्या का सामना हो जाए, तो हमें उस पर दुःखी होने और आँसू बहाने का काम 'कल' पर उठा रखना चाहिए, और 'आज' तो केवल उपाय करने क्षति-पूर्ति करने और समस्या का हल निकालने में लग जाना चाहिए।

परन्तु 'आज नहीं, कल—शायद कल' के सिद्धांत को अपनाने की योग्यता तभी पैदा होगी, जब आप 'आज में रहना' सीख लेंगे और अतीत के गड़े मुर्दों को उखाड़ने की आदत छोड़ देंगे। हमें अपनी पूर्व की असफलताओं से कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि अब हम आइंदा भी कभी सफल नहीं हो सकते और न इस भ्रम में रहना चाहिए कि जब अतीत में हमारे प्रयत्न निष्फल और व्यर्थ सिद्ध हुए हैं, तो भविष्य में भी ऐसा ही होगा। वास्तविकता यह है कि व्यावहारिक जीवन में परिस्थिति इसके बिल्कुल उलट होती है। अतीत की असफलताओं से भविष्य के लिए ज्ञान और अनुभव बढ़ता है। इस लिए आगे चलकर सफल होने की सम्भावना हमेशा अधिक रहती है। यदि आप 'आज में रहने' का गुर सीख लें, अर्थात न अतीत की भूलों के

लिए पश्चाताप में पड़े रहें और न सुदूर भविष्य के कल्पित महल बनाएँ, बल्कि आज की वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार अपना जीवन सँवारने की चेष्टा करें, और हर नए 'आज के दिन' आगे ही कदम बढ़ाते जाएँ, तो यह असम्भव है कि आप अपनी मनोकामना के अनुसार सफल और सार्थक जीवन बिताने के समस्त साधन जुटाने में असमर्थ रहें।

'भविष्य के सुहावने स्वप्न' देखने वालों के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। दुनिया के प्रायः सभी बड़े लोग अपने जीवन में किसी न किसी समय सुहावने स्वप्न देखते रहे हैं। फिर भी यदि हम चाहें, तो अपने लिए एक पथ-दर्शक नियम निश्चित कर सकते हैं, और वह यह कि 'ये स्वप्न बड़े सुखद और आशाप्रद हैं' परन्तु 'आज' तो मुझे स्वप्न देखने का भी अवकाश प्राप्त नहीं, 'आज' तो मुझे उन योजनाओं को कार्यान्वित करना है, जो मैंने इन्ही दिनों में अपनी व्यक्तिगत उन्नति के लिए तैयार की हैं। हाँ, 'कल'—शायद कल मैं सारा दिन इन योजनाओं के सुफलों के सुहावने स्वप्न देखने में बिता सकूंगा।"

जीवन की अभिलाषा है, तो 'आज' में रहिए। आज सब दिनों का दिन' है; परीक्षा और संघर्ष का दिन है। जीवन के यथार्थ स्वरूप में आज को जो महत्व प्राप्त है, वह और किसी दिन को नहीं। कल आप ने जो महान कार्य सम्पन्न किया था उस से संतुष्ट और प्रसन्न होने का आप को अधिकार है। परन्तु खुशी मनाने में भी आज के महत्वपूर्ण दिन को नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं, अथवा कल आप को फिर पश्चात्ताप और निराशा का शिकार बनाना पड़ेगा। आज को आने वाले कल के भरोसे पर कभी नहीं छोड़ा जा सकता। यदि हम आज काम नहीं करेंगे, तो आने वाला कल भी हमारे लिए सुखों की भूमिका नहीं बन सकेगा। यदि हम आज का दिन मीठे सपने देखने में

बिता देंगे, तो कल भी इन सपनों को 'सुहावने स्वप्न' ही पाएँगे और इस प्रकार हम जीवन भर केवल सपनों का जाल ही बुनते रहेंगे, और स्वयं उस जाल में उलझ कर अभाव और दरिद्रता का जीवन बिता देंगे।

पिछले दिनों मेरी भेंट एक पुराने मित्र से हो गई। प्रारम्भिक शिष्टाचार के बाद मुझे उनसे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनका व्यवसाए उन्नतिशील है, और वह उस समय लाखों में नहीं, तो हज़ारों में ज़रूर खेल रहे हैं। वह अपनी आर्थिक स्थिति से संतुष्ट थे। और संतुष्ट क्यों न हों, जब कि कुछ ही वर्ष पूर्व वह सम्भवतः केवल दो सौ रुपये मासिक वेतन पर किसी फ़र्म में नौकर थे। पर आज उनकी अपनी फ़र्म थी अपना घर था और अपनी मोटर थी। परन्तु वार्तालाप में मुझे यह अनुभव करके बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से अब भी संतुष्ट न थे, बल्कि शायद पहले से भी कुछ ज्यादा अस्थिर और अशांत थे। इस अशांति का एक मात्र कारण था उनकी राजनीतिक विचार धारा, जिसे वह कुछ वर्ष पूर्व विश्व की एक मात्र सत्य विचार-धारा और मानव जाति के समस्त दुःखों का उपचार समझते थे। परन्तु उनके व्यावहारिक जीवन से अब उस विचार-धारा की सत्यता संदिग्ध हो गई थी। इस लिए वह और अधिक दृढ़ता के साथ उसकी सत्यता को सिद्ध करना अपना कर्तव्य समझते थे। उन की व्यग्रता और स्थायी उत्तेजना का यही कारण था।

आख़िर जब आप अपने पुराने सिद्धांतों के पक्ष में आध घंटे तक धुँआ-धार भाषण कर चुके, तो मैं कहे बिना न रह सका, "परन्तु मित्र, आप अतीत को भुला क्यों नहीं देते? आप आज की परिस्थितियों के अनुसार अपने विचारों में परिवर्तन

क्यों नहीं करते ? आपका राजनीतिक सिद्धांत, जो वास्तव में आपका अपना भी नहीं था, बल्कि दूसरों से लिया हुआ था, सही था या ग़लत, अब उस पर दुःखित होने की क्या जरूरत है ? परिस्थितियों ने स्वयं उसके विरुद्ध निर्णय दे दिया है। फिर इस प्रकार के राजनीतिक सिद्धांतों को निर्पेक्ष सत्य का स्थान नहीं दिया जा सकता, ऐसी स्थिति में क्या यह उचित नहीं कि आप उन में आवश्यक परिवर्तन और संशोधन करलें ? आज में रहें, और परिस्थितियों को अधिकाधिक अपने अनुकूल बनाने का प्रयास जारी रखें।"

यह तर्क कहाँ तक युक्तिसंगत था, कहने की जरूरत नहीं परन्तु मेरे मित्र ने इसे युक्तिसंगत ही समझा और कहने लगे कि "आप ने बात बड़े पते की कही है। वास्तव में हमें अपना ध्यान अतीत की घटनाओं पर दुःखी होने की बजाए वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने पर केन्द्रित रखना चाहिए, और जहाँ तक हो सके, 'आज' में रहना चाहिए।

मेरे इस विचारशील मित्र की तरह दुनिया में हज़ारों ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो केवल इस लिए शोकग्रस्त और निराश रहते हैं कि वे अपने वर्तमान का बड़ा भाग भूतकाल में व्यतीत करते हैं। इसका प्रभाव अनिवार्यतः उनके नित्य जीवन और क्रिया-शक्ति पर पड़ता है। आइए, एक और सुशिक्षित महाशय का परिचय प्राप्त करें, जिनके सम्बन्ध में आप को वह भ्रम है कि वह बड़े तत्वदर्शी और अनुभवी सज्जन हैं। आपके विचार में ऐसे व्यक्ति को जीवन से संतुष्ट होना चाहिए, क्योंकि मंदे और बेरोज़गारी के इस जमाने में भी वह लगभग एक हजार रुपया मासिक कमा लेते हैं। स्वस्थ और सबल हैं, और किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक कठिनाई से उन्हें दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। परन्तु जरा उनके 'उच्च विचार'

सुनिएः अजी साहब क्या बताएं, बस किसी न किसी तरह गुजर हो रही है। लेकिन यह कोई ज़िन्दगी नहीं है। कोई वक्त था जब मेरे पास अपना निजी मकान था। मैं अपनी पसन्द का काम करता था और अपने विचारों का खुल कर प्रचार करता था। मगर आज मैं अपने को जेलखाने में बन्द महसूस करता हूँ। मैं अपने विचारों के अनुसार काम नहीं कर सकता। कभी-कभी तो मुझे ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिन पर मेरा विवेक विद्रोही हो उठता है।

ऐसे ही एक और सज्जन मिलेंगे, जो दुःख और निराशा की मूर्ति दिखाई देंगे। उनकी वाणी कुछ इस प्रकार होगी, "मैंने अच्छे दिन भी देखे हैं, परन्तु अब तो जीना दूभर हो गया। अब हमारी योग्यता और कौशल का कोई गुणग्राहक नहीं रहा। कोई समय था जब लोग हमें झुक-झुक कर सलाम करते थे। परन्तु आज हमें देखकर मुँह फेर लेते हैं। समय के इस उलट-फेर पर रोता हूँ। इसके सिवा और कर भी क्या सकता हूँ।" यदि आप उन्हें अतीत को भूला कर वर्तमान में रहने का परामार्श दें, तो वह झट कह उठेंगे। "अगर सुख-शांति मेरे भाग्य में होती, तो मैं इस दुर्दशा को पहुंचता ही क्यों? मेरी सम्पत्ति विनष्ट क्यों होती? मेरा सुयोग्य पुत्र अकाल मृत्यु का ग्रास क्यों बनता?" उसके बाद वह आपकी ओर कुछ इस तरह देखेंगे। जैसे कहना चाहते हों, 'न छेड़ो हमें हम सताए हुए हैं!'

इस प्रकार के वार्तालाप को आप जितना चाहें विस्तार दे लें, आपको प्रायः दुःख और निराशा की कहानियाँ ही सुनने को मिलेंगी। ये कहानियाँ अधिकतर सत्य पर आधारित होंगी। परन्तु वे होंगी अतीत की कहानियाँ। वर्तमान से उनका कोई विशेष सम्बंध नहीं होगा। इससे प्रकट है कि 'आज' में न रहने से मनुष्य अपने को अकारण ही कितना दुःखी और दयनीय

बना लेता है।

हमारे समाज में ऐसे व्यक्ति बहुत भारी संख्या में मिलते हैं, जो केवल आत्मज्ञान और आत्मविश्वास के अभाव से अपने को अकारण ही कठिनाइयों में डाल लेते हैं और उनका मुकाबला करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। वे न केवल आज की कठिनाइयों से परेशान रहते हैं, बल्कि उन कठिनाइयों को वे अपने दिल से नहीं निकाल पाते, जिनका सम्बन्ध अतीत से है। इस प्रकार वे स्वयं को 'सदा अभागे' समझकर अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न नहीं करते।

आपका अतीत बहुत उज्जवल था। आपको हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। सहसा ही एक विपत्ति ने आपको घेर लिया और आपका सर्वनाश हो गया। इस महान आघात से आप एक दीर्घकाल तक हतप्रभ से रहे। अब आपकी दशा कुछ अच्छी है। परन्तु जहाँ तक जीवन के पुनर्निर्माण का प्रश्न है, वह आपके सामर्थ्य से बाहर हो चुका है। अब तो आप जीवन से ही ऊब गए हैं, शक्ति और स्फूर्ति खो बैठे हैं। अब आप प्रयत्न भी करें तो भी सफलता के दर्शन नहीं कर सकते। यह दर्शन यथार्थ जीवन का दर्शन नहीं है। यह मृत्यु और विनाश का पथ है।

यदि आप महापुरुषों की जीवन कथाओं का अध्ययन करें, तो आप पर सहज ही में प्रकट होगा कि उनमें से किसी ने भी विपत्तियों के कारण अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं खोया। दुनिया ने उनका विरोध किया, उन्हें नीचा दिखाने के लिए कोई कसर उठा न रखी। परन्तु वे कभी शोकातुर न हुये, कभी भयभीत न हुए। उन्होंने कभी हथियार न डाले, और सदैव बड़ी दृढ़ता और साहस के साथ कठिनाइयों और विपत्तियों का मुकाबला करते रहे। फिर आज ही क्यों पराजय स्वीकार करें ?

आपको चारों ओर घोर अंधकार दिखाई दे रहा है, तो केवल इसलिए कि आप वर्तमान में रहते हुए भी अतीत में भी मग्न हैं; आप शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी अपने को क्षुद्र और निर्बल ही समझते हैं। समय ने आप से जो व्यवहार किया है, वह निश्चय ही खेदजनक है, परन्तु उससे भी ज्यादा खेदजनक वह व्यवहार है जो आप स्वयं अपने साथ कर रहे हैं। यह अपने साथ शत्रुता के समान है।

पिछले दिनों श्री जी० एल० मेहता ने, जो अमरीका में भारत के राजदूत रह चुके हैं, बम्बई के रोटरी क्लब में भाषण करते हुए कहा कि "अमरीका के लोग परिस्थितियों को अपने ऊपर विजयी होने का अवसर नहीं देते, बल्कि स्वयं उन पर विजयी होते हैं, उन्हें अपने पर पूर्ण विश्वास रहता है। और हर अवस्था में आशान्वित रहते हैं, अमरीका की वर्तमान शक्ति और समृद्धि के पीछे वहाँ के लोगों की यही मनोवृत्ति क्रियाशील है।

आज में रहने का बड़ा फ़ायदा यह है कि व्यक्ति का साहस बना रहता है। वह घटनाओं और परिस्थितियों पर निर्पेक्ष दृष्टि डाल कर निश्चय कर सकता है कि उन्हें अपने अनुकूल बनाने के लिए कौनसा मार्ग अपनाना चाहिए। और इस प्रकार के सोच विचार से जब वह अपने कल्याणार्थ कोई योजना तैयार करता है, तो फिर उसे कार्यान्वित करने में दुविधाग्रस्त नहीं होता।

अवश्य अतीत की ग़लतियों और त्रुटियों से लाभ उठाना चाहिए। "मैं अमुक व्यवसाए में असफल क्यों हुआ ? अमुक कार्य को सम्पन्न करने में मुझसे क्या-क्या भूलें हुईं—इन प्रश्नों पर विचार अवश्य कीजिए और आगे के लिए उस अनुभव से लाभ उठाइए। वास्तव में हर असफलता से सफलता क

सम्भावना अधिक उज्ज्वल होती, न कि इसके उलटा । उन लोगों की सफलता अधिक निश्चित है, जो अतीत की असफलताओं का कारण समझ लेते हैं, और भविष्य में उन पर नज़र रखते हैं। अतीत को भुला देने का तात्पर्य यह नहीं कि उससे आँखें ही मूँद ली जाएँ, बल्कि उससे सही निष्कर्ष निकालना है। बीते दिनों की कठिनाइयों और असफलताओं से भयभीत हो कर हताश और निष्क्रिय हो जाना जीते जी मर जाने के समान है।

कुछ लोग अतीत से भी नहीं डरते और वर्तमान को भी उन्नत बनाने की चेष्टा करते हैं। परन्तु उनके रास्ते में बड़ी कठिनाई यह होती है कि वे भविष्य के सुखद सपनों में अत्याधिक लीन रहते हैं। वे रात में सोते समय ही नहीं, बल्कि दिन के उजाले में भी स्वप्न ही देखते रहते हैं। उनके स्वप्न बड़े सुहावने और बड़े सुन्दर होते हैं। "वह दिन आएगा जब मैं सफलता के उच्च शिखर पर पहुंचूगा"—इस प्रकार के स्वप्न देखना बुरी बात नहीं है। वास्तव में मैं तो ऐसे व्यक्ति को बुद्धियुक्त मनुष्य ही नहीं समझता, जो उन्नति और महत्ता के स्वप्न न देखता हो। ऐसे सपनों के बिना उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। यदि ऐसे व्यक्ति पर महानता ठूस भी दी जाए, तो भी वह शीघ्र ही उसे गँवा बैठता है। दुनिया के सब बड़े विचारक, वैज्ञानिक, लेखक और राजनीतिज्ञ ऐसे सपनों के बल पर ही महानता को प्राप्त हुए हैं। परन्तु सपनों के विषय में स्मरण रखने की बात यह है कि आचरण के बिना कोरे विचार व्यर्थ हैं। स्वप्न उन्ही के चरितार्थ होते हैं, जो साध्यासाध्य का विचार करते हुए ही काल्पनिक महल बनाते हैं, और उन्हें यथार्थ में परिणत करने के लिए घोर संघर्ष करते हैं।

सफल होने वाले व्यक्ति जब भविष्य में उड़ान करते हैं,

तो वर्तमान से अपना सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर लेते। यदि वे कल देश के नेता बनना चाहते हैं, तो आज अपना सारा ध्यान और सारी शक्ति उन गुणों की उपलब्धि की ओर केन्द्रित करते हैं, जो एक आदर्श नेता में होने चाहिए। यदि वे महान लेखक और साहित्यकार बनना चाहते हैं, तो आज अपना अधिकांश समय उत्तम पुस्तकों के अध्ययन और साहित्यिक अनुशीलन में व्यतीत करते हैं।

सारांश यह कि यदि आप भविष्य के सपने देखते हैं, तो बड़ी अच्छी बात है, परन्तु सपने देखने में ही उन लोगों का अनुकरण न कीजिए, जो केवल सपनों की दुनिया में ही रहते हैं, और स्वप्न देखकर ही अपना भविष्य बनाना चाहते हैं। दुनिया में ऐसे लोगों की संख्या कुछ कम नहीं है। इन में एक बड़ा समूह तो उन लोगों का है जो अपना समय शब्द-पहेलियाँ हल करने अथवा लाटरी के टिकट ख़रीद कर इनाम की प्रतीक्षा करने में व्यतीत करते हैं। इन क्रीड़ाओं में यदि केवल मनोरंजन अथवा देशोन्नति के लिए बचत का रुपया लगाने के विचार से भाग लिया जाए तो कुछ लाभ भी है। परन्तु पहेली अथवा लाटरी से धन कमा कर ही भविष्य बनाया जाएगा, ऐसी धारणा रखने वाला व्यक्ति मूर्ख ही नहीं पथभ्रष्ट भी है। सच बात यह है कि इन प्रणालियों से अनायास धन प्राप्त हो जाने पर भी कोई स्थायी लाभ नहीं हो सकता, यदि व्यक्ति में धन का समुचित उपयोग करने की योग्यता न हो। इस लिए घूम फिर कर फिर वही बात आजाती है कि जीवन में सफलता के लिए योग्यता प्रधान है, न कि साधन।

सुहावने स्वप्न देखने वालों का एक और वर्ग समझदार और मेहनती लोगों का है। ये लोग भविष्य की सुन्दर कल्पनाओं में मग्न रहते हैं, तो उन्हें यथार्थ रूप देने के लिए परिश्रम

भी करते हैं। परन्तु उनमें एक बड़ा दोष यह होता है कि वे बहुत ही शीघ्रता से अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं। वे अपनी योग्यता और सामर्थ्य की तुलना में अधिक शीघ्रगामी बनना चाहते हैं। परिणाम यह होता है कि वे बार-बार गिरते हैं। बहुधा तो ऐसी स्थिति आ जाती है कि गिरने के बाद फिर वहीं पहुंच जाते हैं, जहाँ से चले थे। यह बार-बार की असफलता अंततः उनके उत्साह और एकाग्रता का अंत कर देती है। फिर उनके जीवन में एक समय ऐसा भी आजाता है, जब उन्हें अपनी योग्यता और क्रियाशक्ति पर विश्वास ही नहीं रहता। वे अपनी निरंतर असफलताओं से यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना उनके बस की बात ही नहीं है। अब यह तो प्रकट ही है कि जब कोई व्यक्ति अपने पर विश्वास ही खो बैठे, तो फिर उससे बड़े कामों की बात तो दूर रहो, इतने काम की आशा भी नहीं की जा सकती, जिससे वह कम से कम सम्मान के साथ जीवन ही व्यतीत कर सके।

कुछ लोग भविष्य की कल्पनाओं में इतने अधिक विमग्न हो जाते हैं, और अपने लिए धन ऐश्वर्य और प्रसिद्धि प्राप्त करने के संघर्ष में इतने तन्मय रहते हैं कि जीवन के उन सामान्य सुखों से भी स्वयं को वंचित कर लेते हैं, जिनका उचित मात्रा में आस्वादन उनके मार्ग में किसी प्रकार भी बाधक नहीं हो सकता। यहाँ तक तो खैर ठीक है। शायद उनके निकट संघर्ष ही परमानन्द है। परन्तु आपत्ति की बात यह होती है कि वे सर्वदा 'बड़े कामों में व्यस्त रहने के कारण नित्य जीवन के छोटे-छोटे कामों की अवहेलना करते हैं। इसका कुप्रभाव उनके स्वास्थ्य, सांसारिक सुख-शांति और संतान की शिक्षा दीक्षा पर पड़ता है। मैं एक ऐसे सुयोग्य युवक को जानता हूँ, जो सफलता-प्राप्ति की उत्कट भावना के वशीभूत होकर अपने

नित्य कर्तव्य से भी विमुख हो गया है। वह महानता के उच्च शिखर पर पहुंचने के लिए इतना व्याकुल और उन्मत्त-सा है, और अपनी समस्त शक्तियों को उस एक उद्देश्य की ओर केन्द्रित करने में इस हद तक अपने को भुला बैठा है कि उसकी यह व्यस्तता और एकाग्रता रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित न होगा कि भविष्य के सुन्दर स्वप्न देखने और उन्हें वास्तव में परिणत करने की चेष्टा करने वाले लोगों की भलाई भी इसी में है कि वे 'आज' की उपेक्षा न करें, अर्थात भविष्य की योजनाओं को कार्यान्वित करने की चेष्टाओं के साथ-साथ वर्तमान परिस्थितियों और आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा करें।

वास्तव में सफल जीवन का रहस्य 'आज' में रहने में है। जो लोग 'आज' में रहते हैं, अपनी वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने पर ध्यान देते हैं, अतीत के अनुभवों से लाभ उठाकर अपने वर्तमान और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की चेष्टा करते हैं, और काल्पनिक महल बनाने के साथ-साथ 'आज' धरती पर उन की नींव भी रखते हैं, वे अवश्य ही सफलता के दर्शन करते हैं। इसलिए 'आज' में रहने के सिद्धांत की कभी उपेक्षा न कीजिए। हमेशा एक-एक कदम आगे बढ़िए, और जब एक चरण पूर्ण हो जाए, तभी दूसरे चरण का प्रारम्भ कीजिए। सारांश यह कि इस प्रकार धीरे-धीरे आगे बढ़िए कि आपके आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को आघात न पहुंचे, और आप केवल अनुभव ही न करें, बल्कि निश्चित रूप से कह सकें कि आप व्यक्तिगत अध्यवसाए से अपना मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। यही विश्वास, यही आत्मबल आपकी सफलता की भूमिका है। इनके सहारे आप निश्चय ही अपने लक्ष्य तक पहुंचेंगे।

प्रोत्साहन

ब्रिटिश पार्लियामेन्ट अपनी कुछ विशेष परम्पराओं के कारण प्रसिद्ध है, और जनतंत्रीय जगत के लिए प्रकाश-स्तम्भ का स्थान रखती है। जनतंत्रीय देशों में इस संसद को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, और जनतंत्र की रक्षा और विकास के लिए उसका अनुसरण किया जाता है। इस प्रतिष्ठित सभा की उत्तम परम्पराओं में एक यह भी है कि इसके परिपक्व और अनुभवी सदस्य नवागंतुकों को प्रोत्साहित करते हैं। जब कोई नया सदस्य अपनी पहली वक्तृता समाप्त करता है, तो पुराने सदस्य उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, और 'पिट के बाद सर्वोत्तम वक्तृता, आदि वाक्यों से उसका साहस बढ़ाते हैं। यह सद्व्यवहार इन तरुण सदस्यों के लिए, जो बड़ी उमंगों के साथ पार्लियामेन्ट में आते हैं, संजीवनी का काम करता है। वे अपनी पहली ही सफलता पर प्रसन्नता और संतोष का अनुभव करते हैं, तथा पहले ही दिन से संसद की कार्यवाही में साहस और विश्वास के साथ भाग लेने लगते हैं। उनमें जो युवकगण वास्तविक योग्यता रखते हैं, अथवा जो अपना सर्वस्व राजनीतिक जगत में अपने लिए स्थान बनाने में लगा देते हैं, और दृढ़ संकल्प से काम लेकर कुछ बन कर दिखाना चाहते हैं वे अंततोगत्वा अपने परिश्रम का पुरस्कार पाने में सफल होते हैं।

यह प्रोत्साहन संसद के नए सदस्यों के लिए कितना लाभदायक होता है, उसका अनुमान लगाने के लिए ब्रिटेन के प्रसिद्ध प्रधान मंत्री मि० ग्लैडस्टोन् के अनुभव पढ़िए, जो आपने अपने भाषण पर संसत्सदस्यों की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में लिखे। आप लिखते हैं कि मैंने अपना पहला भाषण प्रायः एक घंटे तक किया। मैं नहीं जानता कि मैंने क्या कुछ कहा। परन्तु मैं यह देख रहा था कि सभासद मेरे भाषण को बड़े ध्यान और रुचि से सुन रहे थे। और जब मैंने भाषण समाप्त किया, तो पुराने सदस्यो ने मुझे बधाई दी और मेरे मित्रगण भी संतुष्ट दीखते थे। कहना अनुपयुक्त न होगा कि ग्लैस्टोन् की यही सफलता उनकी महानता की नींव सिद्धि हुई।

ब्रिटिश संसद के इतिहास में बहुत कम अवसर ऐसे आए हैं, जब कुछ सदस्यों ने इस उच्च परम्परा का उल्लघंन किया हो। एक बार जब तरुण बैंजमन् डिज्राइली अपना पहला भाषण करने के लिए खड़ा हुआ, तो कुछ सदस्यों ने व्यक्तिगत शत्रुता और जातीय पक्षांधता के वशीभूत होकर उसके भाषण में विघ्न डाला था। परन्तु स्वयं उसके अपने दल के बड़े नेताओं ने इस भूल का प्रतिकार किया, और बैठक की समाप्ति पर डिज्राइली को सांत्वना दी। बाद में विरोधी दल के सदस्यों ने भी अपनी अनैतिकता का अनुभव किया और उन्होंने डिज्राइली से अपने अशोभनीय आचरण के लिए क्षमा-प्रार्थना की।

ब्रिटिन के अधिकतर सुविख्यात संसदीय वक्ता इस सभा की इन्ही उच्च परम्पराओं का परिणाम हैं। और जब हम मानवी मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं, तो इस सिद्धांत की पुष्टि होती है कि मनुष्य वस्तुतः प्रशंसा और प्रोत्साहन का इच्छुक रहता है, और अपने परिश्रम की स्वीकृति प्राप्त करके प्रसन्न और संतुष्ट होता है। तब वह अपनी योग्यता का और

अधिक परिचय देने पर उद्यत ही नहीं होता, बल्कि कुछ करके भी दिखाता है। आपका बच्चा औसत योग्यता रखता है। गणित में वह कुछ कमज़ोर है। आप उसे स्वयं घर पर पढ़ाते हैं, परन्तु आपके प्रयत्न बराबर निष्फल हो रहे हैं। गणित किसी तरह भी बच्चे की समझ में नहीं आता। स्वाभाविक है कि आप बच्चे को मंदबुद्धि और अयोग्य समझें। परन्तु ९० प्रतिशत हालतों में बात यह नहीं होती, बल्कि बच्चे की अयोग्यता का कारण स्वयं आपका अपना रवैया होता है। आप निश्चय ही डाँट-डपट से काम लेते हैं, बराबर उसके कान खींचते रहते हैं अथवा अपशब्द बोलते हैं। उसको 'मूर्ख, अयोग्य कहना तो आपका नित्य नियम बन चुका है। स्पष्ट है कि ये सब उपाय असफल हो चुके हैं। अब तनिक अपने रवैये में परिवर्तन करके उसके सुफल भी देखिए। बच्चे को गणित के नियम नर्मी और प्रेम से समझाइए। उसे कहिए कि जो बात समझ में न आए, बार-बार पूछे। स्वयं आपको भी समझाने का ढंग मालूम होना चाहिए। शिक्षा देना एक कला है। और सुयोग्य अध्यापक ही जानते हैं कि बच्चों को कोई बात किस तरह समझाई जाती है। आपको उस प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही जब आपका रुख स्नेहपूर्ण और नम्र होगा, तो बच्चा शायद शुरु में तो इस परिवर्तन से कुछ विस्मित हो, परन्तु जब उसे विश्वास हो जाएगा कि आप सचमुच उसके सहायक और हित-चिंतक हैं, तो वह आपसे कोई भी बात पूछने में संकोच नहीं करेगा, और इसका परिणाम यह होगा कि गणित के वही नियम, जो बार-बार बताने और 'कान खींचने पर' भी उसकी समझ में नहीं आते थे, अब न केवल उस के कंठस्थ हो जाएँगे, बल्कि वह उन्हें यथास्थान प्रयोग में लाने के योग्य हो जाएगा। इस प्रकार कुछ ही दिनों में उसका 'पिछड़ापन' दूर हो जाएगा।

प्रोत्साहन के महत्व से केवल वही लोग इन्कार कर सकते हैं, जो या तो स्वयं मूर्ख और अयोग्य हैं, अथवा स्वार्थी हैं। अयोग्य व्यक्तियों को प्रायः फटकार सुननी पड़ती है, या कम से कम उन्हें आदर-सम्मान तो कभी नहीं मिलता। इसलिए वे दूसरों की प्रशंसा-प्रोत्साहन करना भी अनावश्यक समझते हैं। उल्टा निन्दा ही करते हैं, जिससे उनकी गुणशून्य आत्मा को कुछ तृप्ति मिलती है। दूसरी तरह के लोग वह हैं, जो सामुहिक जीवन का सम्मान नहीं करते, जो नितांत व्यक्तिवादी और स्वार्थी होते है। यदि वे स्वयं सुखी और सम्पन हैं, उनका व्यवसाय उन्नतिशील है, अथवा नौकरी संकट में नहीं है, तो उनके लिए 'सब ठीक' है। उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि समाज के दूसरे व्यक्ति किस हाल में हैं, और किसे कितनी सहायता की आवश्यकता है। इस वर्ग के लोग प्रायः निर्दयी होते हैं, और सहानुभूति के स्थान पर उपेक्षा और कठोरता का व्यवहार करते हैं। यदि कोई अभावग्रस्त व्यक्ति इनके पास सहायता के लिए जाए, तो वे उल्टा उसके हृदय को व्यंग्य और भर्त्सना के तीरों से छलनी करते हैं। इनमें कुछ तो ऐसे होते हैं, जिन्हें स्वयं अपने समय में इसी प्रकार का दुर्व्यवहार सहन करना पड़ा था, और सफलता-प्राप्ति के संघर्ष में दूसरों से बहुत कम निःस्वार्थ सहायता अथवा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। इसलिए प्रतिशोध-भावना एक प्रकार से इन लोगों की प्रकृति बन गई है, और दूसरों को दुखी और पीड़ित देखकर ये लोग खुश होते हैं। दूसरे वे लोग हैं, जो प्रकृति से तो सभ्रांत और सहृदय हैं, परन्तु सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण, अथवा सौभाग्य से स्वयं कभी विपत्तिग्रस्त नहीं हुए। वे जानते ही नहीं कि जीवन को कठिनाइयाँ क्या होती हैं; और समय का उलट फेर मनुष्य को किस प्रकार विवश और असहाय बना देता है।

वे अनुभव ही नहीं करते कि दुनिया में हजारों-लाखों व्यक्ति धिक्कार और तिरस्कार के नहीं, बल्कि सहायता और सहानुभूति के अधिकारी हैं।

यह अज्ञानता, विशेषकर उन लोगों की अज्ञानता, जो किसी के घाव पर सहानुभूति का फाहा रख सकते हैं, किसी के टूटे हुए दिल को प्रोत्साहन के दो शब्दों से जोड़ सकते हैं, वस्तुतः बड़ी खेदजनक है। दुनिया में हज़ारों लोग ऐसे हैं, जिनकी जीवन नैया सफलता-तट तक पहुँचने से पहले आँधी और तूफ़ान में घिर गई है। ये लोग अपना जीवन बनाने की चेष्टाओं में सर्वस्व लुटा बैठे हैं। अब ये सहानुभूति के पात्र हैं। जीवन-पथ के इन क्लान्त यात्रियों के लिए साहस बढ़ाने वाले दो शब्द नई शक्ति का स्रोत बन सकते हैं। यदि इन्हें यह 'वरदान' उचित समय पर मिल जाए, तो ये विनाश से बच सकते हैं, अन्यथा उनका दुःखद अंत निश्चित है। तो क्या उन लोगों का, जो मार्ग की कठिनाइयों से भली भांति परिचित हैं, अथवा जो कालचक्र की कठोरताओं से बचे हुए हैं, यह कर्तव्य नहीं कि वे अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करें, और दुर्दशाग्रस्त लोगों की सहायता और प्रोत्साहन को अपना नित्य नियम बनाएँ ? अवश्य है, उनका नैतिक, मानुषिक मनुष्योचित बल्कि पवित्र कर्तव्य है।

कहते हैं कि प्रोत्साहन का प्रभाव वनस्पति तक पर पड़ता है। वनस्पति पर संगीत का प्रभाव तो सर्वज्ञात है। संगीत चूंकि हर्षवर्द्धक और आनन्ददायक होता है, इसलिए सम्भवतः पौधे उससे प्रभावित होते हैं। जीव-जन्तुओं पर प्रेम-भरे उत्साहवर्द्धक शब्दों का प्रभाव तो स्पष्टतः देखा जा सकता है। आप पालतु पशुओं को प्यार करें; उनका साहस बढ़ाएँ, तो वे प्रसन्न होकर उछलने कूदने लगते हैं। वे आपकी भाषा नहीं

समझते, परन्तु आपके चेहरे के लक्षणों से आपकी आंतरिक भावनाओं को पढ़ लेते हैं। और जब उन्हें विश्वास हो जाता है कि आप वास्तव में उनसे प्यार करते हैं, तो वे उत्तरस्वरूप आपके प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा का प्रदर्शन करने में संकोच नहीं करते।

'प्रेम भाषा और शब्दों के आधीन नहीं होता' अथवा 'दिल को दिल से राह होती है' प्रसिद्ध सूक्तियां हैं, और सत्य पर आधारित हैं। प्रेम का निवेदन और अभिव्यक्त के बिना भी विश्वास दिलाया जा सकता है। यही बात घृणा पर भी लागू होती है। आप किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अपने मन को घृणा के विचारों से भर लीजिए, और चाहे आप अपनी इस मनो दशा से किसी को भी सूचित न कीजिए, परन्तु जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हैं, वह आपके विचारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेगा। तनिक विचार कीजिए कि जब मौन रहने की अवस्था में भी आप अन्य अप्राणियों पर प्रभाव डाल सकते हैं, तो जब आप प्रकट रूप से अपने अच्छे या बुरे मनो-भावों को अभिव्यक्त करेंगे, तो लक्ष्य व्यक्ति प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकेगा। जब चेतनाहीन वनस्पति और बुद्धि-हीन जीव-जन्तु भी प्रोत्साहन का प्रभाव ग्रहण करते हैं, तो भावनायुक्त मानव उससे प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है। तो फिर क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं कि यदि हम किसी को फूल नहीं दे सकते, तो कम से कम उस पर काँटे तो न फेंके।

निराशा, विकलता, भय और उदासीनता वर्तमान युग के चार अभिशाप हैं। इसमें संदेह नहीं कि भौतिक प्रगति ने हमें जितनी भी सुविधाएँ प्रदान की हैं, उनसे ज्यादा इन कुपरि-णामों ने मानवी जीवन को संकटमय बना रखा है। कोई समय था, जब गरीब लोग 'खाल मस्त' रहा करते थे। परन्तु अब न

धनिक चैन की बंसी बजा सकते हैं और न निर्धन संतोष का जीवन बिता सकते हैं। आज पैसे वाले इस चिंता में घुले जा रहे हैं कि जाने कल भी इज्जत सलामत रहेगी या नहीं। और साधन-हीनों को रात दिन यही फ़िक्र खाए जा रही है कि जीवन की आवश्यकताएँ कहाँ से पूरी होगीं। साराँश यह कि जिसे देखिए, चिन्तित, दुखी और अशांत है। परन्तु सुख शांति और संतोष का कहीं पता नहीं। विशेषज्ञों ने इस व्यापक अशांति का कारण ढूंढने की कोशिश की, तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वर्तमान युग क्रांति और परिवर्तन का युग है। इसलिए इस युग में मानसिक विशृंखलता स्वाभाविक है। यह परिस्थिति किसी एक वर्ग तक सीमित नहीं। अमीर गरीब सभी परेशान हैं, इसलिए आज मनुष्य को आध्यात्मिक सहयोग की पहले से भी अधिक आवश्यकता है।

यदि आप पूंजीपति हैं; धन सम्पत्ति के स्वामी हैं, तो अपनी पूंजी और धन के वरदानों में उन श्रमिकों को भी सम्मिलित कीजिए, जिनके खून-पसीने की कमाई से आपके पास पूंजी संग्रह हुआ है। यदि आपके पास रहने के लिए भव्य राज-प्रसाद है, तो इस बात का भी ध्यान रखिए कि आपके कर्मचारियों को सिर छिपाने के लिए कोई स्थान तो नसीब हो। आप अपने कार्यकर्ताओं को सदैव इतना काफ़ी पारिश्रमिक दीजिए, जो उपस्थित परिस्थितियों में जीवन बिताने योग्य हो, अन्यथा पूँजी और श्रम का स्वाभाविक संघर्ष अपने चरम बिन्दु पर पहुँच कर स्वयं आपकी वैसी ही दशा कर देगा। इसके अलावा आप गरीबों, अपाहिजों और असहाय लोगों की निःस्वार्थ सहायता भी कीजिए। धनवान होना पाप नहीं है। धन का दुरुपयोग और धन समेटने की लालसा में गरीब मज़दूरों और किसानों के अधिकारों को पद-दलित करना ही पाप है। और यह पाप

ऐसा है जिसका दंड परलोक में नहीं, इसी दुनिया में मिल जाता है।

पूजी और श्रम का संघर्ष वास्तव में स्वार्थपरता और अभाव का संघर्ष है। जहाँ पूंजी इतनी लोभी और श्रम इतना अभाव-ग्रस्त नहीं, जैसे अमरीका और इंगलैंड, वहाँ यह संघर्ष भी इतना उत्कट और भयकंर नहीं है। कहीं तो संघर्ष का स्थान सहयोग ने ले लिया है। याद रखिए, आजका श्रमिक विगत शताब्दी का दीन-हीन और निर्बल श्रमिक नहीं है कि मुटठी भर साधनयुक्त व्यक्तियों को धन समेटते देखकर उसे भगवान की इच्छा मात्र और अपनी दरिद्रता को पिछले जन्म के पापों का दुष्यपरिणाम समझे। आज वह वास्तविकता का ज्ञाता, शिक्षित, सबल और संगठित है। इसलिए आज पुँजीपतियों के एकाधिकार का समय नहीं रहा। आज यदि पूंजी को जीवित रहना है, तो उसे समय के लेखे को पढ़ना होगा, और बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने आचार-विचार में परिवर्तन करना होगा। जिन समुन्नत देशों के पूंजीपति इस तथ्य को समझ गए हैं, वे श्रम के संगठन और नित्य बढ़ते हुए जीवन स्तर से भयभीत नहीं होते, बल्कि हैनरी फ़ोर्ड की तरह उसे समाज की सर्वांगीण प्रगति और समृद्धि की मुख्य प्रणाली मानते हैं। हैनरी फ़ोर्ड का कहना था कि श्रमिकों को सदैव उच्चतम वेतन देना ही हितकर होता है। लोगों की क्रय-शक्ति जितनी ज्यादा होगी, उतना ही उत्पादन और बढ़ेगा, विक्रयण अधिक होगा, और परिणामतः पूंजी का लाभ और राशि बढ़ेगी। हैनरी फ़ोर्ड के इस सिद्धांत का ही परिणाम है कि आज अमरीका में हर पाँच व्यक्तियों में से तीन के पास मोटर कारें हैं। यदि हमारे देश के पुंजीपति भी इस सिद्धांत को अपना लें, तो वर्ग-संघर्ष का आज ही अन्त हो सकता है; और शायद फिर सार्वभौम युद्ध की

सम्भावना भी सदा के लिए समाप्त हो जाए।

आज की अशांति का यदि निर्पेक्ष भाव से विश्लेषण किया जाए, तो ज्ञात होगा कि इसका मुख्य कारण द्वितीय महायुद्ध है। अणु उदजन बम, भूख, बेरोजगारी और सामाजिक कलह सब इसी युद्ध के 'उपहार' हैं। युद्ध से पहले जो वस्तु एक रुपय में मिलती थी, अब चार रुपय में भी दुर्लभ है। इस महंगाई और अभाव से मानवी शरीर के अलावा उसकी आत्मा भी भीषण रूप से प्रभावित हुई है। और इस परिस्थिति पर काबू पाने का एक मात्र उपाय है सांत्वना और प्रोत्साहन। आप किसी की आर्थिक सहायता कर सकें या न कर सकें, पर उसका प्रोत्साहन करने में कृपणता से काम न लें। और जहाँ तक सम्भव हो सके, उसे निराशा, अस्थिरता, भय और उदासीनता के चंगुल से मुक्ति लाभ करने में सहायता दें।

प्रोत्साहन जीवन के हर क्षेत्र में और हर स्थल पर उपयोगी है। नन्हे बच्चे प्रोत्साहन से चलना सीखते हैं। और जब पाठशाला में जाने लगते हैं, तो प्रोत्साहन से परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं। वयस्क होने पर जब किसी कार्यालय, व्यापारिक संस्था या प्रशासनिक विभाग में काम करते हैं, तो उस समय भी प्रोत्साहन ही उनका मार्गदर्शक होता है। यदि आप किसी व्यापारिक संस्था के मालिक या व्यवस्थापक हैं, तो आपने जरूर अनुभव किया होगा कि कोई नवयुवक जब पहली बार आपके यहाँ काम शुरू करता है, तो प्रारम्भ में वह कुछ हिचकिचाता सा रहता है, और अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय नहीं देता। उसे आशंका रहती है कि कहीं कोई भूल-चूक न हो जाए, और परिणामस्वरूप उसे नौकरी से जवाब ही मिल जाए। इसलिए वह अपनी सूझ-बूझ के अनुसार काम करने से कतराता है, और हर कदम पर निर्देशण का अपेक्षी रहता है। परन्तु यदि उसको

प्रोत्साहन दिया जाए, तो वह शीघ्र ही संभल जाता है। उसे अपने पर विश्वास हो जाता है, और कुशल कार्यकर्त्ता सिद्ध होता है। यदि आपने कभी इसका अनुभव नहीं किया, तो अब इसका प्रयोग करके देखिए। आपकी यह शिकायत निश्चय ही दूर हो जाएगी कि आपको काम के आदमी नहीं मिलते। बात यह है कि जब आपमें काम के आदमी तैयार करने का उत्साह ही नहीं है, तो फिर आप उनके न मिलने की आशा क्यों रखते हैं?

सुयोग्य विद्वानों ने हतोत्साहन को मानव जाति का सब से बड़ा शत्रु कहा है। इसमें संदेह नहीं कि हतोत्साहन मनुष्य की योग्यताओं का नाश करने का सबसे प्रभावी साधन है। यदि आप किसी योग्य और अनुभवशील व्यक्ति के पीछे पड़ जाएँ और सब मिलकर उसे हर वक्त मूर्ख और अयोग्य कहना शुरु कर दें, तो निश्चय ही उसकी सब चतुराई समाप्त हो जाएगी। उसे अपने पर विश्वास नहीं रहेगा, और वह अनुभव करने लगेगा कि उसका कोई सुझाव सही और युक्ति संगत नहीं हो सकता। इसलिए या तो वह अपनी समझ से कोई सुझाव प्रस्तुत करने का साहस ही नहीं करेगा, या अगर कर्तव्य पालन के विचार से कुछ कहेगा भी, तो उसकी बात तुरंत रद्द कर देने के योग्य होगी। कारण, भय और उद्विग्नता की अवस्था में मस्तिष्क में उत्तम विचार नहीं आ सकता। जीवन-क्षेत्र में ये जितने भी दुर्दशा ग्रस्त लोग आपको दिखाई देते हैं, इनमें से अधिकतर के दुर्भाग्य का दायित्व उनके मात-पिता, अध्यापकों, अफ़सरों या दोस्तों पर है, जो प्रोत्साहन की बजाए हतोत्साहन में अधिक रस लेते थे। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि आप मानवता के मान दंड पर खरे सिद्ध हों, तो प्रोत्साहन को अपना जीवन-दर्शन बनाइए, ताकि आप अपने कर्तव्य का उत्तम रीति से पालन कर

सकें। आप अपने बच्चों, दोस्तों और अधीनस्थ कर्मचारियों को अथवा जिन लोगों का कार बार के सिलसिले में आपसे मिलना जुलना होता है, उन्हें आशा और साहस का उपहार देने में अनुदार न बने। उत्साह, दान से आप की कोई हानि नहीं होती, और दान पाने वाले का जीवन सार्थक हो सकता है।

यदि आप प्रोत्साहन के महत्व से परिचित हैं—प्रेम और सहानुभूति के शब्दों से पीड़ित हृदय को सांत्वना दे सकते हैं; यदि आप उन नवयुवकों का जीवन बनाने में सहायता करते हैं, जो आपके अधीनस्थ हैं, और अपने बच्चों को भी आत्म-विश्वासी बनाना अपना कर्तव्य समझते हैं, तो फिर एक और व्यक्तित्व को भी अपनी स्नेह-दृष्टि का पात्र समझिए। वह व्यक्तित्व स्वयं आपका है। जहाँ आप दूसरों को प्रोत्साहित करते है, वहां कभी-कभी अथवा जब भी आवश्यकता हो, स्वयं अपने को प्रोत्साहित करना भी जरुरी समझिए। आपको यह सुझाव शायद कुछ विचित्र दिखाई पड़े, शायद आपके विचार में स्वयं अपना प्रोत्साहन सम्भव ही नहीं। जो व्यक्ति स्वयं शोक-ग्रस्त हो; जिसे निराशा और असफलता ने पंगु बना दिया हो, वह आप अपनी सहायता क्या कर सकता है? प्रकट में आप की यह आपत्ति उचित ही है, परन्तु यदि आप यह सकंल्प कर लें कि ऐसे अवसरों पर जब आपको चतुर्दिक अंधकार ही दिखाई देगा, जब आप किसी उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहेंगे अथवा जब आपको पराजय का मुँह देखना पड़ेगा, तो आप उत्साहवर्द्धक विचारों की सहायता लेंगे, और निराशा व आत्मतुच्छता को अपने मन पर आधिपत्य जमाने का मौका नहीं देंगे, तो इस आचरण से आप अवश्य ही अपने को सहारा दे सकेंगे, और अपने मित्रों सम्बन्धियों की अपेक्षा स्वयं अपनी अधिक सहायता कर सकेंगे। कारण यह है कि मित्रगण आप

के प्रति सहानुभूति तो प्रकट कर सकते हैं परन्तु वे कभी यह नहीं जान सकते कि आपका घाव कितना गहरा है। इसलिए उन के शब्दों को प्रायः औपचारिक ही समझा जाता है। परन्तु स्वयं आपकी सहानुभूति सच्ची और निष्ठायुक्त होगी, क्योंकि आप से ज्यादा कौन जान सकता है कि आपके दुःख और अशांति के कारण क्या हैं। इसके अलावा साहसप्रद विचारों के आगमन से शोकमय विचारों का ह्रास होता है।

कुछ गुणी और सहृदय पुरुष दूसरों से सहानुभूति करने और उनको प्रोत्साहन देने में तो कभी त्रुटि नहीं करते, परन्तु स्वयं अपने को इस कृपा का पात्र नहीं समझते। उनपर कोई विपत्ति आ पड़े ; कोई असफलता उनका दिल तोड़ दे, तो वे अपने को साहस प्रदान करने का कष्ट नहीं करते। वे अपने लिए वैसे ही उत्साहवर्द्धक शब्दों का प्रयोग नहीं करते, जिन से वे दूसरों का ढाढस बाँधते हैं। वे स्वयं अपने को धीरज रखने और संकट में पुरुषार्थ करने का उपदेश नहीं करते। कभी नहीं कहते कि 'इस बार पराजय होगई, तो क्या हुआ। मैं जान लगा कर लड़ा तो सही ! इस असफलता से लाभ उठाऊंगा और उस समय तक लड़ता रहूँगा, जब तक विजय प्राप्त नहीं कर लेता। इससे भी ज्यादा दुर्भाग्य की बात यह है कि ये लोग अपनी सहायता और प्रोत्साहन की बजाए उल्टा अपने को हतोत्साहित करते हैं, और आकरण ही हताश, पराजित शोकार्य बने फिरते हैं। ये लोग असफलता पर अपने को कोसते हैं ; कोई दुर्घटना हो जाए, तो आँसू बहाने बैठ जाते हैं। ये कभी हानि का प्रतिकार करने पर उद्यत नहीं होते, बल्कि ज़रा सा विघ्न पड़ जाने पर अपने को यह परामर्श देते हैं कि अब सफलता के लिए संघर्ष करना व्यर्थ है। इस प्रकार ये अपने विनाश को निकटतर लाते हैं।

संदेह नहीं कि ये सज्जन जो इस प्रकार का आचरण करते हैं, ऐसा अज्ञानतावश करते हैं। यदि उन्हें ज्ञात हो जाए कि ऐसे संकटमय अवसरों पर अपना प्रोत्साहन भी उतना ही आवश्यक होता है, जितना कि दूसरों का, तो वे ऐसे आत्महत्या-सदृश आचरण के अपराधी कभी न बनें। प्रश्न यह है कि ऐसी घातक अज्ञानता को रहने ही क्यों दिया जाए ?

यदि आप मनुष्य मात्र से अन्याय नहीं करते, तो आपका मानवतावाद वस्तुतः प्रशंसनीय है। मनुष्य वही है, जो दूसरों के काम आए। यदि वह किसी की सहायता न कर सके, तो कम से कम इतनी सावधानी तो ज़रूर बरते कि उसके कारण किसी की हानि न हो। परन्तु मैं आपसे थोड़ी सी और उदारता की माँगे करता हूँ। जहाँ आप दूसरों से अन्याय नहीं करते, वहाँ स्वयं अपने पर भी तो अत्याचार न करें। यदि आप अपनी अधिक सहायता नहीं कर सकते, तो अपने को कम से कम उतनी कृपा का अधिकारी तो समझें ही, जितनी कि आप दूसरों पर करते हैं। अर्थात अपने को अकारण ही नुकसान तो न पहुंचाएँ। यदि आप अपना प्रोत्साहन नहीं कर सकते, तो कम से कम अपने को सर्वदा हतोत्साहित भी तो न करते रहें।

'अपना सम्मान स्वयं कीजिए' एक प्रसिद्ध उक्ति है। इस प्रकट सत्य का खंडन कभी नहीं किया जा सकता। मनुष्य मात्र को यह परामर्श इसलिए दिया गया है कि जब वह स्वयं अपना सम्मान करेगा, तो अन्य लोग भी उसे सम्मान दृष्टि से देखेंगे। यही सिद्धांत प्रोत्साहन के विषय में भी सत्य है। अर्थात आप को सर्वदा अपना प्रोत्साहन करते रहना चाहिए, ताकि लोग आप का उदाहरण दे कर कहा करें कि देखो, कितना साहसी पुरुष है। इस चर्चा से स्वयं आपका साहस और उत्कृष्ट होगा और लोग भी आपका अनुसरण कर अपना साहस बनाए रखने

की चेष्टा करेंगे।

मेरे एक मित्र हर वक्त अपना दुखड़ा रोया करते थे। एक दिन कहने लगे कि "सहानुभूति तो इस युग में रही ही नहीं। अब कोई किसी के दुःख दर्द में भाग नहीं लेता। अब तो स्वार्थपरता कटुता और कठोर हृदयता का चलन है। अब तो किसी के मुंह से सांत्वना के दो शब्द भी सुनने को नहीं मिलते। इसका कटु अनुभव मुझे इन्हीं दिनों में हुआ। यह तो आप जानते ही हैं कि मैं आजकल आर्थिक कठिनाइयों में घिरा हुआ हूँ। इसलिए जब घर बैठे-बैठे जी घबरा जाता है, तो काफ़ीहाउस में जा बैठता हूँ। परन्तु दुःख वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ता। मित्र-गण व्यंग्य-बाण चलाते हुए आते हैं। वे मेरा ढाढस नहीं बाँधते, मुझे दृढ़ रहने का परामर्श नहीं देते, बल्कि मेरी दरिद्रता और विवशता का उपहास करते हैं। इससे मेरी पीड़ा कई गुणा बढ़ जाती है।" जब वह अपनी आपबीती सुना चुके, तो मैंने उनसे कहा कि वह अपने मित्रों को कोसने की बजाए स्वयं अपने को दोषी समझें, क्योंकि जब आप स्वयं अपने को प्रोत्साहन नहीं देते, तो किसी को क्या पड़ी है कि आपको सांत्वना देने में अपना समय नष्ट करे। इसके बाद मैंने उन्हें परामर्श दिया कि वह मित्रों में पीड़ित 'शरणार्थी' बनकर न जाया करें, और हर वक्त लोगों से यह आशा न रखें कि वे आपका बोझ अपने कंधों पर उठाएगें। साधारणतः किसी पर प्रकट नहीं होने देना चाहिए कि आप पीड़ित और असहाए हैं। विशेषकर जब आप मित्रमंडली में जाएँ, तो अपने दुखड़ों को घर पर ही छोड़ जाएँ। यदि आप ऐसा करेंगे, तो आप को मित्रों की निर्दयता की शिकायत नहीं रहेगी। और यदि आप इतने ही शोकातुर हैं कि मित्रों के सामने प्रसन्नचित रहना आपके बस की बात नहीं, तो फिर आप मित्रमंडली का वातावरण दूषित करने की बजाए किसी उद्यान

में जा बैठें, जहाँ फूल खिले हों, शीतल वायु मंद गति से चल रही हो, और पक्षियों का हल्का कलरव सुनाई दे रहा हो। वहाँ किसी एकांत स्थान पर बैठकर फूलों की सुगंधि का आनन्द लीजिए ; स्वयं को उस सुन्दर वातावरण में तल्लीन कर दीजिए। दुःख और निराशा के विचारों को अपने मन से दूर कर दीजिए, और उनके स्थान पर आशा और प्रसन्नता के विचारों का बीजारोपण कीजिए। यह काम कठिन जरूर है, पर एक दम से असम्भव नहीं, बशर्ते कि आप धैर्य-दृढ़ता की सहायता लें। स्मरण रखिए, आप शोकमय विचारों से उस समय तक मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि आप इच्छाशक्ति से काम न लें और अपने को प्रोत्साहन न दें।

अपने को प्रोत्साहन देने का केवल यही लाभ नहीं होता कि मनुष्य दुःख और शोक से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, बल्कि इससे आत्मविश्वास की भावना को भी बल मिलता है। मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि वह कठिनाइयों पर काबू पाने की शक्ति रखता है ; उसमें लड़ने, परिस्थितियों को अनुकुल बनाने और संघर्ष करने का सामर्थ्य है, यह मनोवृत्ति व्यक्तिगत उन्नति के लिए परमावश्यक है। इसलिए जब कभी आप पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़े, और आपके कदम डगमगाने लगें, तो उसी क्षण अपनी महत्ता का स्मरण कीजिए। इस अनुभव को पुनर्जीवित कीजिए कि आप इस-धरती के विजेता-मनुष्य हैं, आपको कोई परास्त नहीं कर सकता। इस विचार से आप का साहस पुनर्स्थापित हो जाएगा, आपको अपने पर फिर से विश्वास हो जाएगा। तब आप कठिनाइयों के आगे नत होने की बजाए वीरतापूर्वक उनसे दो-दो हाथ करने के लिए आगे बढ़ेंगे। और आप यह देख कर स्वयं चकित रह जाएंगे कि आपके इस संकल्प मात्र से कठिनाइयों का किस तरफ प्रभाव

होता है। कठिनाइयाँ उसी समय तक भयानक होती हैं, जब तक आप उनसे डरते रहें। ज्यों ही आप उन्हें तुच्छ समझ कर पाँव तले रोंदने के लिए आगे बढ़ेंगे, आपका पलड़ा भारी हो जाएगा और कठिनाइयाँ एक-एक करके स्वयंमेव समाप्त होती जाएंगी।

अपने को प्रोत्साहन कैसे दिया जा सकता है, और चारों ओर निराशा की घटाएँ छाई हों, तो आशा की किरण कैसे देखी जा सकती है? इसके लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं। परन्तु उनसे लाभ तभी उठाया जा सकता है जब आप 'कर्म-मार्ग' पर अग्रसर हों। केवल सुन्दर विचारों और उत्तम सुझावों से कोई उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं हुआ, न भविष्य में होने की सम्भावना है। इस लिए जो भी सुझाव रखे जाएँ, उन्हें कार्यान्वित करने का दृढ़ संकल्प कर लीजिए। फिर यह सम्भव नहीं कि आप इस अभिमान में सफल न हों।

यदि आप दुनिया में पुरुषोचित जीवन व्यतीत करना चाहते हैं; यदि आपकी इच्छा है कि विकटतम परिस्थितियों में भी आपके कदम न उगमगाएँ, तो फिर आप अपने को कभी भी तुच्छ, नगण्य, निर्बल और असहाय न समझिए। आप अपने मन व मस्तिष्क को इस विश्वास से पुष्ट बनाइए कि आप हर मुश्किल, हर विपत्ति और हर संकट का मुकाबला कर सकते हैं। केवल मुकाबला ही नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें अपने सामने से हटा भी सकते हैं। याद रखिए, मनुष्य साधारणतः अपनी शक्ति और योग्यता के एक अल्प अंश से ही काम लेता है। इस बात को बार-बार दुहराइए, ताकि आप को विश्वास हो जाए कि अभी आपके पास अतिरिक्त शक्ति का भंडार मौजूद है। जब आप किसी महत्वपूर्ण समस्या को हल

करने में लगे हों, अथवा कोई कठिन काम सम्पन्न करना चाहते हों, तो तत्काल यह संकल्प कीजिए कि आप इस समस्या को हल करने अथवा कार्य को सम्पन्न करने के लिए इसके अतिरिक्त शक्ति-भंडार से काम लेंगे, जो अभी तक व्यवहार में नहीं आया। इसके बाद आप अपनी सफलता का विश्वास रखिए।

महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन भी आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाने और अपने को प्रोत्साहन देने के लिए उपयोगी होता है। जब हम साहसी और पराक्रमी पुरुषों के जीवन-वृत्त का अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि दुनिया में कोई कठिनाई ऐसी नहीं, जिसका हल न निकाला गया हो। हम यह भी अनुभव करते हैं कि हमें दुःख और पीड़ा सहन करनी पड़ती है, तो यह कोई नई बात नहीं है। मनुष्यमात्र सृष्टि के पहले दिन से ही विपत्तियों का मुकाबला करता आरहा है, और उसने कभी पराजय स्वीकार नहीं की।

अपने को प्रोत्साहन देने के लिए उत्साह वर्द्धक वाक्यों की पुनरावृत्ति भी उपयोगी होती हैं। "जा को राखे साइयाँ" साहस है, तो आस है, "सफलता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" आदि वाक्यों को आत्मसात कर लीजिए। उन्हें अपने मानस पटल पर इस तरह अंकित कर लीजिए कि निराशापूर्ण विचारों की बाढ़ भी उन्हें मिटा न सके। उन्हें केवल कंठस्थ ही न कीजिए बल्कि उनके अभिप्रायः को अपने अंतःकरण का अंग बना लीजिए, उनकी सत्यता पर पूर्ण विश्वास कीजिए। एक नोट बुक रखिए, जिसमें प्रसिद्ध लेखकों और कवियों की उत्साहवर्द्धक सूक्तियाँ और सुभाषित लिखते जाएं। इन्हें प्रायः

पढ़ा कीजिए, यहां तक कि वे आपके अचेतन मन में घर कर जाएँ। जब कभी आप अनुभव करें कि पतन के विचार आप पर आक्रमण करने लगे हैं, तो इन सूक्तियों की आवृत्ति कीजिए। इन्हें बार-बार दुहराने से आप की नसों में नवजीवन की स्फूर्ति का संचार होगा ।

भय और आतंक

"मैं बालपन में बड़ा डरपोक था। मैं उस पर लज्जा भी अनुभव करता था। मैं कई वर्ष तक कोई काम न कर सका, क्योंकि मैं समझता था कि दूसरे लोग हर काम को मुझसे बेहतर जानते हैं। दरअसल मुझ में आत्मविश्वास का अभाव था। और यही मेरा दुर्भाग्य था। मैं स्वयं को संसार का सब से बड़ा मूर्ख और अज्ञानी व्यक्ति समझता था।" ये विचार जार्ज बर्नाड्शा के हैं, उस विश्वविख्यात कवि और नाटककार शा के, जिसने अपनी अमर कृतियों में अपने विचारों की अभिव्यक्ति अपूर्व निर्भयता के साथ की है। उसने जिन विचारों का प्रचार किया, उनका एक बड़ा अंश उसके देशवासियों की रुचि के अनुसार भी नहीं था। फिर भी वह बीसवीं शती का सर्वोत्तम अंग्रेजी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। अपने को मूर्खतम व्यक्ति समझने वाला बर्नाडशा जीवन के अंतिम दिनों वर्तमान युग के महापुरुषों में गिना गया।

बर्नाड् शा की तरह एक और निर्भीक विचारक और स्पष्टभाषी दार्शनिक बर्टरन्ड रसल भी स्वीकार करता है कि जब उसकी अवस्था तेरह-चौदह वर्ष की थी, तो वह बहुत ही लज्जालु और डरपोक था। वह लिखता है कि एक बार ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ग्लेडस्टोन् हमारे यहाँ पधारे। उस समय घर में मेरे सिवा और कोई नहीं था। मैं इतना आतंकित और

विह्वल हो चुका था कि उनके सामने जाने की कल्पना से ही मेरे प्राण उड़े जा रहे थे। आखिर जब मुझे विवश होकर उनके सम्मुख उपस्थित होना पड़ा, तो मैं उनके एक भी प्रश्न का उत्तर न दे सका।" यही रसल् बाद में अपनी स्वतंत्र विचार पद्धति और नैतिक साहस के लिए प्रसिद्ध हुआ। और आज भी जब इसकी अवस्था ६० वर्ष के लगभग है, वह किसी न किसी नए आन्दोलन का नेतृत्व सँभालता रहता है। जाने कितनी बार उसे अपने विचारों के दंडस्वरूप कारावास की यातना सहन करनी पड़ी है। परन्तु उसने कभी इसकी परवाह नहीं की। एक बार जेल से रिहा होने पर उसने लिखा कि 'जेल में मुझे जो शांति मिली, वह और कहीं उपलब्ध नहीं हो सकती।'

अधिनायकों में मसोलिनी ने अपनी आत्मकथा में साफ-साफ लिखा है कि भाषण करने से पहले उसे अपनी स्वाभाविक भीरुता पर विजय प्राप्त करनी पड़ती थी। इसी प्रकार सरोजनी नायडो ने भी स्वीकार किया है कि "मैं बचपन में अपनी बाह्य कुरूपता के कारण हीन-भावना से ग्रस्त थी। अधिक स्पष्ट शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मैं भीरु थी।" यही सरोजनी नायडो भारत की सर्वश्रेष्ठ महिला वक्ता और कवयित्रों के रूप में प्रसिद्ध हुई। इनसे बढ़कर स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपने अनुभवों में लिखा है कि जब वह पहली बार न्यायालय में वकालत करने के लिए खड़े हुए, तो उन के मुंह से एक भी शब्द न निकला इस पर उन्होंने अपने मवक्किल से लिए हुए फ़ीस के रुपय तत्काल लौटा दिए। परन्तु देखने की बात यह है कि गाँधीजी जैसे परम वीर पुरुष भी प्रारम्भ में कितने भीरु थे।

राजनीति के अलावा दूसरे क्षेत्रों में भी ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है, जो किशोरावस्था में लज्जालु, संकोची और हीन

भावना-ग्रस्त रहे हैं, परन्तु बाद में उन्होंने सदैव अदम्य साहस का प्रदर्शन किया। ऐसा लगता है कि शुरु में भीरुता का परिचय देने वाले ही आगे चलकर विशेष साहसी सिद्ध होते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह है कि अत्यधिक अनुभवशील होने के कारण वे शीघ्र ही समझ लेते हैं कि उन्हें जिस चीज़ से डर लगता है, उसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है। और एक बार जब उन्हें विश्वास हो जाता है कि डरने का कोई कारण नहीं है, तो वे बड़ी आसानी के साथ अपनी प्रतिक्रियाओं पर काबु पा लेते हैं।

इतनी बात स्वयंसिद्ध है कि भय, आतंक, भीरुता और हीन भावना किसी असाध्य रोग का नाम नहीं है। इस बीमारी से बड़े-बड़े महारथी भी बचपन और युवावस्था में ग्रस्त रहे हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी उम्र, ज्ञान और अनुभव की वृद्धि हुई, उन्होंने इन निर्मूल भावनाओं से मुक्ति प्राप्त कर ली न केवल यही, बल्कि उन्होंने ऐसे-ऐसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए कि दुनिया उनकी वीरता और साहसिकता पर चकित रह गई।

अब प्रश्न यह है कि यदि भय और घबराहट पर काबू पाया जा सकता है, तो इन्सानों की बहुत बड़ी संख्या उनसे मुक्ति लाभ करने में कठिनाई क्यों अनुभव करती है? मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि भय और आतंक के विषय में वास्तविक कठिनाई यह है कि लोग इन्हें 'स्वाभाविक' समझते हैं, अर्थात जिस प्रकार बचपन में अविकसित बुद्धि के कारण वे किसी बात से डरते थे, उसी प्रकार वयस्क होने पर भी डरते रहते हैं। ऐसे लोग शारीरिक दृष्टि से वयस्क हो जाने पर भी मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से बालक ही बने रहते हैं। वे जब जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, तो बचपन की आदत उनका पीछा नहीं छोड़ती। उन्हें एक-एक पग पर

अज्ञात भय के कारण कठिनाई अनुभव होती है। यदि वे तीक्ष्ण बुद्धि वाले हों, तो उन्हें शीघ्र ही इन कठिनाइयों को अस्तित्व-हीनता का ज्ञान हो जाता है, और वे उन की ओर से निश्चिंत हो जाते हैं। अन्यथा वे जीवन-संग्राम में वीरतापूर्वक भाग नहीं ले सकते, और परिणामतः उन पुरस्कारों से वंचित रहते हैं, जो उनसे भी कम योग्यता रखने वाले लोग केवल अपने साहस और आत्मबल के सहारे प्राप्त कर लेते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञ आत्मज्ञान, अर्थात अपने अतीत के अध्ययन और निरीक्षण पर इस लिए जोर देते हैं, ताकि मनुष्य को यह अनुभव हो सके कि उसकी असफलता का दायित्व उसकी परिस्थितियों और कठिनाइयों से ज्यादा स्वयं उसके विचारों और मिथ्या धारणाओं पर है। और यह कि वह स्वयं अपना सुधार करके अपनी परिस्थितियों का भी सुधार कर सकता है।

यदि आप भय और आतंक अथवा पराजय-वादी मनोवृत्ति का शिकार हैं, और किसी महत्वपूर्ण कार्य में केवल इस डर से भाग नहीं लेते कि कहीं आपको असफलता का मुँह न देखना पड़े, तो आप अवश्य ही दुःखी और शोकग्रस्त रहते हैं। आप इस मनोदशा के कारणों का पता लगा सकते हैं। उसके लिए आपको अपने अतीत का सिंहावलोकन करना चाहिए। आप अपने बचपन की अवस्थाओं और घटनाओं को स्मरण कीजिए। यदि आपने निर्पेक्ष होकर अपने अतीत की पड़ताल की, तो आप पर प्रकट होगा कि आप आज भरी सभा में बोलने का साहस इसलिए नहीं करते, कि जब आप प्राथमिक शिक्षालय में पढ़ते थे, और कभी अपने सहपाठियों के सामने बोलना चाहते थे, तो अध्यापक आप को टोक दिया करते थे, और सहपाठी आप पर हँसा करते थे। या यदि आप हीनभावना से ग्रस्त हैं, तो केवल

इसलिए कि माता आप से दूसरे बच्चों की अपेक्षा कम प्यार करती थी, और आपके बड़े भाई-बहन बात-बात पर आपको पीटा करते थे। यदि आप संकटों का सामना करने से डरते हैं, तो उसका एक कारण यह हो सकता है कि आप अपने माता-पिता के लाड़ले रहे होंगे, और आपने बचपन में संकट और विपत्ति का नाम तक न सुना होगा। यदि आप जीवन-क्षेत्र में अपना मार्ग स्वयं बनाने की कला से अनभिज्ञ हैं, तो उसका कारण यह है कि बचपन में माता-पिता ने आपकी हर कामना पूरी की और आपने जो कुछ भी चाहा, वह आपको बिना प्रयास के मिल गया। सारांश यह कि जब आप अपने अतीत का ध्यान-पूर्वक विश्लेषण करेंगे, तो अपने वर्तमान दोषों का सम्बंध बालावस्था की किसी आदत या घटना से जुड़ा हुआ पाएंगे।

इस आत्म-निरीक्षण से आप पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा कि यदि आप आज कठिनाइयों से डरते हैं, तो उसका कारण यह नहीं कि उन पर विजए प्राप्त करना वास्तव में बड़े जोखिम का काम है, अथवा आप इनपर काबू पाने की योग्यता नहीं रखते, बल्कि असल कारण एक अस्पष्ट सा भय है, एक मिथ्या धारणा, जिसने बचपन में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार जन्म लिया था, परन्तु जो अब बिल्कुल निराधार और निरर्थक होकर रह गई है। इस तथ्य को समझ लेने के बाद आप अपना सुधार बड़ी सहजता से कर सकते हैं। अब आप बच्चे नहीं रहे, जो किसी के सहारे के अपेक्षी हों, बल्कि अब आप स्वयं दूसरों के लिए सहारा हैं। इस प्रकार आप अपनी वास्तविकता से अवगत होकर अपने पर विश्वास करने के योग्य बन सकेंगे और अपने जीवन का निर्माण कर सकेंगे।

बाल-सुलभ भावनाओं के अतिरिक्त समाज के डर से भी मनुष्य बहुधा अपने को पहचानने में असमर्थ रहता है। "यह बात

अच्छी नहीं, क्योंकि लोग इसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते या अमुक काम किया गया, तो लोग क्या कहेंगे", आदि इस प्रकार के विचार भी मनुष्य को बहुधा अपनी पसन्द का काम करने से रोक देते हैं। दूसरों की भावनाओं और सामाजिक मर्यादाओं का आदर करना अच्छी बात है। परन्तु इस विषय में मध्यम मार्ग को अपनाना ही उचित होता है। समाज में रहते हुए समाज के केवल उन्हीं नियमों का पालन करना चाहिए, जो देशोन्नति के लिए हितकर हों, और आत्मज्ञान और आत्मोत्थान के मार्ग में बाधक न हों। समाज में बहुत सी रूढ़ियाँ और कुप्रथाएँ भी चलती हैं, और व्यक्ति पर कुछ ऐसे प्रतिबंध भी रहते हैं, जिनका पालन किसी दृष्टि से भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। ऐसे नियमों अथवा प्रतिबंधों को शिरोधार्य नहीं करना चाहिए, समाज की कुछ परम्पराएँ पतनोन्मुख होती हैं। ऐसी परम्पराओं का अनुसरण कैसे प्रशंसनीय हो सकता है ? यदि समाज उन्नतिशील भी हो, तो भी बिना सोच-विचार के भेड़चाल चलने में कोई बड़ाई नहीं है। लकीर के फ़कीर बनकर आप अपने भीतर के महान पुरुष को कभी जागृत नहीं कर सकेंगे। यही बात परम्पराओं के विषय में भी सही है। एक बच्चे को बचपन ही से परम्पराओं के सम्मान और अनुसरण का पाठ पढ़ाया जाए, तो वह सियाना होकर बुराई को देखते हुए भी कुछ बोल नहीं सकता। उसके विरुद्ध प्रतिवाद नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में वह कोई मौलिक बात कैसे पैदा कर सकता है ?

कुछ लोग अपने जीवन की दशा नहीं बदल सकते, कोई नया विचार प्रस्तुत नहीं कर सकते, अथवा किसी अच्छे सिद्धांत को स्वीकार करने में संकोच करते हैं, क्योंकि वे पुराने विचारों और अन्धविश्वासों का परित्याग करना नहीं चाहते, उन्हें उन विचारों और सिद्धान्तों के मिथ्या होने का विश्वास हो भी जाए

तो भी वे उनसे चिमटे रहते हैं, ताकि कोई यह न कहे कि यह लोग भ्रष्ट हो गए हैं, और समाज में बैठने योग्य नहीं रहे हैं।

अब इस आइने में अपना चेहरा और उसकी विशेषताओं को देखिए। यदि आपको एक ऐसे मनुष्य का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, जो आत्मविश्वासी, वीर और साहसी है, जो अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, जिसके चेहरे पर भय और आतंक का चिन्ह तक नहीं, जो 'असम्भव' शब्द से अनभिज्ञ है, जो पराजय स्वीकार नहीं करता, हथियार नहीं डालता, जो आख़िर दम लड़ता है, जो स्वयं को एक महान शक्ति का साझीदार समझता है, और अपना पूरा हक लिए बिना समझौता नहीं करता, तो फिर आपको अपने पर गर्व करने का पूर्ण अधिकार है। और मुझे विश्वास है कि आप अपने लक्ष्य तक पहुँचकर ही रहेंगे, और मनुष्य होने के नाते आप पर जो दायित्व है, उसे पूरा करके ही रहेंगे।

परन्तु यदि यह चित्र किसी ऐसे इन्सान का है, जो देखने में तो जवान है, परन्तु उसके चेहरे पर धैर्य-दृढ़ता के लक्षण नहीं हैं; उसकी रगों में जीवन का गर्म लोहू तरंगित नहीं, जो भावनाओं और विचारों की दृष्टि से अभी अबोध बालक ही है, जो एकांत प्रिय है ; किसी सभा-समाज में जाता है, तो सबसे अलग-अलग अंतिम पंक्ति में बैठता है, जो दूसरों के सहारे जीना चाहता है, और सहारा न मिले, तो हताश हो जाता है—यदि यह चित्र आपका है, तो आइना तोड़ने की कोशिश न कीजिए, और मनोवैज्ञानिकों को बुरा भला न कहिए। यदि आइने में आप को किसी हारे हुए दुर्दशा-ग्रस्त मानव की आकृति दिखाई देती है, तो यह आइने का कसूर नहीं, आइने का तो काम ही यह है कि वह आपको आपकी वास्तविक आकृति दर्शादे। इसलिए आइने को शत्रु समझने की बजाए अपना मित्र समझिए, ऐसा मित्र, जो आपको धोखा नहीं देता ; आपसे झूठ

नहीं बोलता। इसके सिवा आपको और कौन बताएगा कि आप अपनी हीन भावनाओं और भ्रांत आचरण से एक अच्छे भले इन्सान को विनाश मार्ग पर लिए जा रहे हैं।

मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने यदि आपको अपने अतीत का दर्पण देखने का परामर्श दिया है, तो इसलिए नहीं कि आप लज्जित और दुखित हों, बल्कि केवल इसलिए की आप अपने सम्बन्ध में यथार्थ से परिचित हो जाएं। जीवन का रहस्य जानने वाले ये विशेषज्ञ आपको दुःख देकर खुश नहीं होते, बल्कि वे आपके सहायक और पथदर्शक बनना चाहते हैं। वे आप को बताते हैं कि जीवन-तरिण को मंझधार से निकाल कर सफलता तट तक कैसे ले जाया जा सकता है। इसलिए उन से झगड़ने की बजाए उनका सहयोग लीजिए। और उनकी सहायता से इन खंडहरों पर, जो आपको अपने अतीत के दर्पण में दिखाई देते हैं, भव्यशाली नए भवन का निर्माण कीजिए।

इस लेख के प्रारम्भ में मैंने कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भय और आतंक तथा हीन-भावना का प्रतिकार किया जा सकता है। यदि आप चौबीसों घंटे भयभीत रहते हैं, और ज़रा से कष्ट पर हतप्रभ हो जाते हैं, तो अनुसंधान कीजिए कि आप पर इस मनस्थिति का आक्रमण कब और कैसे हुआ। और जब आप अपने अतीत पर दृष्टिपात करेंगे, तो आप पर प्रकट होगा कि इसका उत्तरदायी आपका बचपन है। यह निश्चय कर लेने के बाद अपने से कहिए, "पर यह तो उन दिनों की बात है, जब मैं निर्बल और अबोध बालक था। अब तो मैं वयस्क हूँ, सबल और सबुद्धि हूँ। अब मैं अच्छे-बुरे का विचार कर सकता हूँ। फिर मैं क्यों अपने को हीनतर और तुच्छ समझूं। इस मौखिक प्रयास के बाद आप क्रियात्मक प्रयास भी कीजिए। मित्रमंडली में मन की बात

खुल कर कहिए। जब किसी सभा में बैठिए, तो वार्तालाप और विचार-विनिमय में भाग लीजिए। अपना मत निःसंकोच व्यक्त कीजिए, और आलोचना से भयभीत न होइए। मित्रों और विपक्षियों से अकारण ही आतंकित रहने की आदत पर सयत्न काबू पाइए। यदि आपके नगर में कोई विचार गोष्ठि है, तो उस के सदस्य बन जाइए और वाद-विवाद में खुल कर हिस्सा लीजिए। शुरू-शुरू में आपको अवश्य कुछ भय अनुभव होगा, परन्तु एक—दो बार की चेष्टा के बाद ही आप यह देख कर स्वयं आश्चर्य करने लगेंगे कि दूसरों को अपनी बात सुनाना कितना सहज और स्फूर्तिदायक होता है।

प्रसिद्ध सेनापति डग्लस् मैकार्थर ने लिखा है कि वीरता का तात्पर्य यदि यह है कि भय और डर का अनुभव तक न हो, तो फिर मैंने आज तक कोई वीर पुरुष नहीं देखा। संसार में शायद ही कोई इन्सान हो, जो भय से पूर्णतया मुक्त हो चुका हो। हाँ, वह मनुष्य अवश्य शूरवीर है, जो भय के बावजूद अपना अभियान जारी रखने का सामर्थ्य रखता हो, "इस तथ्य को हृदयंगम कर लीजिए, और संकट का मुकाबला करते समय अपने सामने रखिए। आप में और 'बड़े लोगों, में इसके सिवा और कोई अंतर नहीं कि उन्होंने युवावस्था में प्रवेश करने के बाद बालपन की आदतों का परित्याग कर दिया, जब कि आप अभी तक उनके प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके। आप अभी तक बच्चों की तरह डरते, बच्चों की तरह सोचते और बच्चों की तरह घबरा उठते हैं। आदमी उम्र को दृष्टि से जवान हो सकता है, परन्तु जरूरी नहीं कि वह भावनाओं और विचारों की दृष्टि से भी परिपक्व हो चुका हो। इसलिए आप सबसे पहले अपने इस दोष को दूर कीजिए, और पूर्णदर्शी बनिए। जीवन को व्यर्थ न समझिए, अपने को क्षुद्र और निर्बल न जानिए। अपने जीवन-

उद्देश्य से अवगत होइए, और उसकी पूर्ति के साधन जुटाइए।

मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का सर्वसम्मत निर्णय है, कि मानवी जीवन का उच्चतम लक्ष्य "मनुष्यता की पूर्त्ति है" और इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब मनुष्य दृष्टिसम्पन्न हो। ऐसे मनुष्य की परिभाषा यों की गई है कि वह अपने मस्तिष्क से काम लेता है, अपने को क्षुद्र और निर्बल नहीं समझता और जीवन से जाने अनजाने निराश नहीं होता। इसलिए यदि आप सफलता के अभिलाषी हैं, तो दृष्टिसम्पन्न बनिए। किसी भी उद्देश्य की पूर्त्ति और किसी भी प्रयास में सफलता निर्भर करती है आत्मविश्वास पर। परन्तु जिस मस्तिष्क पर भय का साम्राज्य होगा, वहाँ आत्मविश्वास के लिए स्थान कहाँ ? इसलिए यदि आप वर्तमान दुर्दशा, दरिद्रता और दुश्चिंता से मुक्ति प्राप्त करने के इच्छुक हैं, तो सबसे पहले भय और आतंक पर विजय प्राप्त कीजिए। और इसका एक मात्र उपाय यह है कि जीवन-संग्राम में क्रियात्मक भाग लीजिए। अपने को सबल समझिए, अपनी स्थिति और योग्यता का मूल्यांकन कीजिए। अपनी त्रुटियों और दोषों का सुधार कीजिए और एक-एक पग आगे बढ़ने की पद्धति अपनाइए। कठिनाइयों से कभी न डरिए, क्योंकि डर कर आप उन से बच नहीं सकते। संकटों का सामना कीजिए, अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार अपना लक्ष्य निर्धारित कीजिए और उस तक पहुँचने के प्रयत्नों में लग जाइए। यदि आपका लक्ष्य ठीक है, तो आपके सफल न होने का कोई कारण ही नहीं हो सकता।

स्वभाव में परिवर्तन

आत्मविश्वास को पुनर्स्थापना के लिए स्वभाव में परिवर्तन का बड़ा महत्व है। कुछ लोग अपनी वास्तविकता से परिचित होते हैं। उन्हें पता होता है कि वे अपने पर विश्वास करके बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु स्वभाव और प्रवृतियाँ उनकी उन्नति में बाधक हो जाती हैं। अपनी कुछ आदतों के कारण वे उन्नति की कोई योजना ही तैयार नहीं कर पाते। और यदि इस कठिनाई को पार कर भी जाएं, तो योजनाओं को कार्यान्वित नहीं कर सकते।

मैं एक लेखक को जानता हूँ, जिसने आज से बीस वर्ष पूर्व निबन्ध लेखन आरम्भ किया था। उसके लेख देश की उच्च कोटि की पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे, और उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उन दिनों में, जब कि अभी हमारे देश में पत्र-पत्रिकाओं की ओर से पारिश्रमिक देने का रिवाज नहीं पड़ा था, उस से कितने ही सम्पादक उचित पारिश्रिमक के प्रस्ताव के साथ लेख भेजने का अनुरोध किया करते थे। इस लेखक को अपनी योग्यता पर गर्व भी था, और अपनी लेखनी पर अटल विश्वास था। उसके आत्मविश्वास का कुछ अनुमान इस घटना से लगाइए कि एक बार उसने एक पत्रिका की लेख प्रतियोगिता में भाग लेते हुए अपने मित्रों को पहले ही से कह दिया था कि इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार उसका होगा

और वास्तव में ऐसा ही हुआ। जब पुरस्कार पाने वालों के नाम प्रकाशित हुए, तो सबसे ऊपर उसी का नाम था।

जिस लेखक का प्रारम्भ इतना आशावर्द्धक हो, उसका अंत कितना भव्य होना चाहिएं, यह आप स्वयं सोच सकते है। परन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस लेखक को आज भी बहुत कम लोग जानते हैं, वह बीस वर्ष तक लेख लिखते रहने के बावजूद प्रसिद्ध लेखक नहीं बन सका। आज उसके घनिष्ठ मित्रों के सिवा और कोई भी नहीं जानता कि उसे बीस वर्ष पहले भी अपने लेखों का पारिश्रमिक मिलता था।

इस लेखक की इस निराशाजनक स्थिति का कारण क्या है? एक शब्द में कहना हो, तो यह उसका आलस्य है। वह स्वभाव से ही आलसी और आरामतलब है। जब उसका एक लेख किसी पत्रिका में प्रकाशित हो जाता था, तो फिर महीनों तक वह नया लेख लिखने का ख्याल भी नहीं करता था। इस बीच किसी सम्पादक का पत्र मिलने पर वह जी कड़ा करके कुछ लिखने बैठ भी जाता, तो नया लेख तीन-चार महीने से पहले पूरा होने में नहीं आता था। कभी-कभी तो वह साल-साल भर तक एक पंक्ति भी नहीं लिखता था। सभी अच्छे लेखक कुछ लिखने के लिए नई सूझ की प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है कि एक कुशल लेखक को साल भर तक कुछ सूझे ही नहीं। यह लेखक तो लिखने की बात सिरे से सोचता ही नहीं था। इसका परिणाम वही हुआ, जो हो सकता था। अर्थात वह आज भी वहीं है, जहाँ से चला था, जबकि उससे कहीं कम योग्य और अपरिपक्व लेखक देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों में गिने जाते हैं।

अभी पिछले दिनों एक पुराने जानकार से संयोगवश भेंट हो गई। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब वह सेना में भरती हुआ था, तो उसकी

चतुराई, असाधारण बोध-शक्ति, अपार साहस और आकर्षक व्यक्तित्व का विचार करते हुए मेरा विश्वास था कि वह पाँच-सात वर्षों में ही किसी ऊँचे पद पर पहुँच जाएगा। परन्तु मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह दुर्दशा और निराशा की मूर्ति बना हुआ था। पूछने पर पता चला कि वह आजकल कोई भी काम नहीं कर रहा है, और कई हज़ार रुपये का देनदार है। बाद में उसके एक मित्र से सारी कहानी सविस्तार सुनने को मिली। उसने एक साल के भीतर ही सेना से त्याग-पत्र देकर अपने गाँव में खेती-बारी शुरू की थी। परन्तु शहरी आदतों के कारण वह खेती-बारी में सफल न हो सका। इसपर उसने अपनी पैत्रिक भूमि को बेच करीब के कस्बे में कपड़े की दुकान कर ली। परन्तु छः महीने भी बीतने न पाए थे कि दुकान बेच कर पुलिस में भरती हो गया। वहाँ किसी अफ़सर से झगड़ा होने पर नौकरी छूट गई, तो जीवन-बीमा का काम शुरू कर दिया। उसमें असफल हुआ, तो ऊनका कारबार आरम्भ किया। इसी ऊन के धंधे में उसे हज़ारों का घाटा हुआ। और तभी से····· जब मुझे यह ब्योरा मालूम हुआ, तो उसकी दूरावस्था पर मेरा आश्चर्य दूर हो गया। मुझे समझते देर न लगी कि वह अपने दुर्भाग्य के लिए स्वयं ही दायी था। इसलिए नहीं कि उसने अपना जीवन बनाने की चेष्टा नहीं की, बल्कि इसलिए वह स्थिरमन नहीं था, और किसी काम को भी मन लगा कर नहीं कर सकता था।

दुनिया में कितने ही लोग केवल इसलिए सफल नहीं होते और उन्हें अपनी योग्यता और चेष्टाओं का उचित पुरस्कार नहीं मिलता, क्योंकि वे कुछ ऐसी आदतों के गुलाम हैं, जो उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने नहीं देतीं। उनका पालन-पोषण और शिक्षण सही ढंग से नहीं हुआ, इसलिए उनके चरित्र में

कुछ ऐसी त्रुटियाँ रह गई हैं, जो उनकी उन्नति के लिए बाधक बनी हुई हैं। उनका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि वे न तो अपनी आदतों को बुरा समझते हैं और न उनमें सुधार और परिवर्तन ही करने के लिए तैयार हैं।

कुछ लोग, जो जीवन के उद्देश्य और अपनी योग्यताओं का ज्ञान रखते हैं, और बड़े काम करना चाहते हैं, वे जब देखते हैं कि उनकी कुछ आदतें उनकी प्रगति में बाधक हो रही हैं, तो वे उनका परित्याग करने का संकल्प कर लेते हैं। परन्तु जब थोड़े दिनों के प्रयत्न से आदत नहीं छूटती, तो वे उतावलेपन से समझ लेते हैं कि आदतों से पिंड छुड़ाना असम्भव है। इस प्रकार अपनी योग्यता का उचित मूल्य प्राप्त नहीं कर सकते।

जो लोग अपने को नहीं पहचानते, कोई उज्जवल ध्येय अपने सामने नहीं रखते, वे यदि आजीवन आदतों के गुलाम रहें, और इस दासता को किसी प्रकार भी अपमानजनक न समझें, तो ऐसे लोगों को सचमुच क्षम्य समझना चाहिए, परन्तु जो लोग अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहते हैं, और यह भी जानते हैं कि वे अपने बाहुबल से स्वयं अपना भाग्य बना सकते हैं, वे भी अपनी आदतें बदलने में असफल क्यों हों, जब कि वे भली-भाँति जानते हैं कि सफलता-प्राप्ति के लिए आदतों में परिवर्तन आवश्यक है, और वे उसके लिए क्रियात्मक प्रयत्न भी करते हैं? इसका उत्तर यह है कि उनमें से अधिकतर इस भ्राँति में पड़े हुए हैं कि आदतों में परिवर्तन सम्भव ही नहीं। उन्होंने कहीं से यह वचन सुन रखा है कि आदतें इन्सान के साथ मरघट तक जाती हैं, और वे इसे सत्य मानते हैं। इसलिए वे आदतों में परिवर्तन की कोई कोशिश नहीं करते। बस जब कभी जोश में आते हैं, तो बिना सोचे-समझे फ़ैसला कर डालते हैं कि अब आइन्दा अमुक आदत

से दूर का भी सम्बंध नहीं रखेंगे। परन्तु जब उस पर अमल करने का समय आता है, तो वे उसे कल पर टालते जाते हैं, अथवा अनिच्छा से डरते-डरते कदम उठाते हैं। आप जानते ही हैं कि जो काम डरते-सहमते किया जाए, उससे कभी मनोवांछित फल नहीं मिल सकता। ये लोग चूँकि असफलता के विचारों को अपने मन से निकाल नहीं सकते, इसलिए वे आदतों पर विजय पाने के प्रयास में विरले ही सफल होते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि आदतों को बदलना अति कठिन है। परन्तु यह सोचना कि किसी आदत से पीछा छुड़ाया ही नहीं जा सकता, अज्ञानता तो है ही, आत्मवंचना भी है। और इस प्रकार के तर्क केवल वही लोग उपस्थित करते हैं, जो अपनी किसी आदत को लोक-प्रसिद्ध कम्बल की भाँति स्वयं ही नहीं छोड़ना चाहते। जो लोग आदतों की दासता से मुक्ति-लाभ करके अपने जीवन में उचित और हितकर परिवर्तन करना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले अपने इस सिद्धांत अथवा विश्वास को तिलांजली देनी होगी कि आदतों में परिवर्तन सम्भव ही नहीं है। इस शिला को तोड़ने के बाद उन्हें ध्यानपूर्वक यह देखना चाहिए कि कौनसी आदत उनकी उन्नति की सम्भावनाओं को अंधकारमय बना रही है। इस अनुभव की उपलब्धि के लिए यथार्थवाद से काम लेना चाहिए, और अपने सब आचार-विचार की अच्छी तरह समीक्षा करनी चाहिए। कुछ आदतें प्रकट में हानिकर नहीं दीखतीं, और नैतिक दृष्टि से भी उन्हें निन्दनीय नहीं समझा जाता, परन्तु जरा गहन दृष्टि डालो जाए तो पता चलता है, कि वे उन्नति की स्वाभाविक गति को मंद करती हैं इसलिए उन्हें भी त्याज्य आदतों की सूची में रख लेना चाहिए, जब यह सूची तैयार हो जाए, तो नई आदतों से शुरू करके धीरे-

धीरे पुरानी आदतों तक पहुँचना चाहिए, और एक वक्त में अपना सारा ध्यान किसी एक आदत विशेष को छोड़ने पर केन्द्रित रखना चाहिए। एक साथ सारी आदतों को बदल देना बहुत मुश्किल होता है इसलिए एक-एक करके शत्रु को परास्त करना ही बुद्धिमता है। इस काम में उतावला कभी नहीं होना चाहिए।

आदतों पर विजय पाने में असफलता का सबसे खेदजनक पहलू यह है कि उसके बाद व्यक्ति को अपने पर विश्वास नहीं रहता। वे समझने लगता है कि वह स्वयं अपना कर्त्ता नहीं है, बल्कि परिस्थितियाँ और घटनाएँ तथा उसकी आदतें ही सब कुछ हैं, वह तो केवल उनके आदेशों का पालन करने वाला सेवक मात्र है। इस प्रकार आदतों के परित्याग का रोज-रोज संकल्प करने और उसको कार्यन्वित करने में असफल रहने से फ़ायदे की बजाए उल्टा नुकसान हो जाता है। इसलिए आदतों को बदलने में जल्दी न कीजिए और खूब सोच-समझ कर जब एक बार किसी आदत को छोड़ने का इरादा करें, तो उसे पूरा किए बिना दम न लें। संकल्प करके पूरा न करना संकल्प न करने से भी ज्यादा अहितकर है। इसिलए आदतों के विषय में कभी अपना संकल्प न तोड़िए, अन्यथा आदत तो और सुदृढ़ होगी ही, उल्टा आपके आत्मविश्वास की अपार हानि होगी।

आदतों का परित्याग करने के विषय में बहानेबाज़ी से कभी काम न लीजिए। कुछ लोग अपनी किसी आदत को हानिकारक तो समझते हैं, पर उसे छोड़ने पर तैयार नहीं होते। जब उनसे इसका कारण पूछा जाए, तो झट उत्तर देते हैं कि इस आदत को छोड़ने से उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। मेरे एक मित्र अपने अत्यधिक धुम्रपान की शिकायत करते रहते हैं। परन्तु जब उनसे कहा जाए कि इस आदत को छोड़ क्यों

नहीं देते, तो वह सहज ही में उत्तर देते हैं कि छोड़ तो दूं, लेकिन डाक्टर कहते हैं कि तमाकू छोड़ देने से मुझे हृदय रोग होने की आशंका है। आदतों से चिमटे रहने वाले बहुत से लोगों का ऐसा ही रवैया होता है। वे किसी आदत को छोड़ने की हामी भर लेते हैं, लेकिन उसे पूरा नहीं करते, और पूछने पर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कोई न कोई बहाना घड़ लेते हैं। यह बहानेबाज़ी उनके चरित्र को दूषित कर देती है, उनके आत्मविश्वास की हानि करती है और उन्हें कर्ममार्ग पर अग्रसर होने से रोक देती है। बल्कि सच बात यह है कि वे अपनी दूसरी हानिकर आदतों में एक और बहानाबाज़ी की वृद्धि कर लेते हैं, जो पग-पग पर उनका रास्ता रोकती है। जब भी वह किसी काम को हाथ लेने में का संकल्प करते हैं, तो यह नई आदत तत्काल बीच में आ खड़ी होती है, और उन्हें सहारा देती है कि उस काम को कल पर या फिर किसी दिन के लिए उठा रखें।

निमित्त-साधन की तरह आत्मवंचना भी आदतों के परित्याग में बाधक होती है। आदतों को छोड़ने में बहुत बार केवल इसलिए सफलता नहीं मिलती कि आत्मवचना हमें सांत्वना देने के लिए मौजूद होती है। आप रोज़ सिनेमा देखते हैं और कभी-कभी ख्याल आता है कि यह पैसे और समय दोनों का अपव्यय है। परन्तु तभी आत्मवंचना दिलासा देती है कि हिन्दुस्तानी फिल्में देखना तो शायद फ़ज़ूलखर्ची है, क्योंकि उनमें बकवास के सिवा और कुछ नहीं होता, लेकिन अंग्रेजी फिल्मों के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती। उनसे साधारण ज्ञान की वृद्धि होती है, और आदमी घर बैठे सारी दुनिया की सैर कर लेता है। फिर मनोरंजन तो है ही। यदि दिन भर की मेहनत के बाद शाम को थोड़ा सा आराम भी न किया, तो फिर कमाने की

जरूरत ही क्या है। यदि आप अपना सुधार करना चाहते हैं, तो आत्मवंचना के इस भ्रमजाल को तोड़ दीजिए, और अपने किसी कृत्य का औचित्य मिथ्या सांत्वना में तलाश न कीजिए। अपनी कमज़ोरियों का निर्पेक्ष निरीक्षण कीजिए, और उन्हें दूर करते समय 'केवल एक बार' या 'बस आज' की रिआयत से फ़ायदा न उठाइए। क्योंकि यदि आप ने 'एक छूट' या 'एक दिन की क्षमा' की आड़ ली, तो कल फिर आपका जी चाहेगा कि इसी छूट या क्षमा से फिर एक बार लाभ उठाएँ और इस तरह आपका 'केवल आज' रोज-रोज आकर 'सदा' का पर्याय बन जाएगा।

हानिकारक आदतों से पिंड छुड़ाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनके स्थान पर लाभदायक आदतें अपनाई जाएँ, ताकि पुरानी आदतों के फिर से जड़ पकड़ने की सम्भावना ही न रहे। बहुधा मनुष्य क्षुद्र विचारों अथवा अहितकर आदतों से केवल इसलिए मुक्ति लाभ नहीं कर पाता कि वह छोड़ने के बाद भी उनकी जगह ख़ाली छोड़ देता है। आदतें जब देखती हैं कि उनकी जगह लेने वाला कोई नहीं आया, तो वे पुनः लौट आती हैं। इसका इलाज यह है कि एक बुरी आदत को छोड़ कर उसकी जगह एक अच्छी आदत अपनाई जाए। उदाहरण के लिए यदि आपका अधिकांश समय कल्पना के महल बनाने में व्यतीत होता है, तो इस आदत को छोड़ने के लिए कोई अच्छी किताब पढ़िए, अथवा किसी विषय पर कुछ लिखने की चेष्टा कीजिए। यदि आप अर्थाभाव का शिकार हैं, और हर वक्त इसी ग़म में घुले जा रहे हैं, तो अवकाश के समय में कोई लाभदायक व्यवसाए सोचिए। इस तरह आप हवाई किले बनाने की आदत से छुटकारा हासिल कर सकते हैं।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ, जो पन्द्रह-बीस वर्ष पहले

गर्मियों में जब कि सब कोठियों वाले पहाड़ों पर चले जाते थे, घूम फिर कर ख़ाली कोठियों का निरीक्षण किया करता था। एक बार मैंने उससे इस आदत के बारे में पूछा, तो कहने लगा कि वह कोठियों की बनावट देखता है, ताकि जब वह शीघ्र ही अपनी कोठी बनवाए, तो उसका नक्शा सबसे अच्छा हो। मैं उसकी महत्वाकांक्षा की प्रशंसा किए बिना न रह सका।

लेकिन पिछले दिनों मुझे उन सज्जन से मिलने का फिर संयोग हुआ। आप एक साप्ताहिक पत्र जिसका सम्पादन भी शायद आप स्वयं ही करते थे, बाज़ार में बेच रहे थे। आप उस पत्र के मालिक नहीं थे, बल्कि वैतनिक कर्मचारी थे, और वेतन भी आप को नक्द नहीं, बल्कि 'माल' के रूप में मिलता था। अर्थात आपको प्रति सप्ताह पत्र की साठ प्रतियाँ मिल जाती थीं, जिन्हें बेच कर आप अपना गुजारा कर रहे थे। मैंने उन्हें उनकी पुरानी आदत की याद दिलाई, तो कहने लगे कि हाँ, कोठियों के चक्कर तो मैं अब भी लगाता हूँ। दरअसल मेरा पत्र बिकता ही कोठियों में है। इसका सम्पादक-पद संभाले अभी मुझे थोड़े ही दिन हुए हैं। मगर पत्र दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है। बस अब वह दिन दूर नहीं, जब मैं अपनी पसन्द की कोठी बनवा लूँगा।" कह कर वह चलते बने।

मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ कि इस आदमी के मस्तिष्क में काई विकार नहीं है। केवल इतनी बात है कि वह सपनों की दुनिया में रहता है। उसने अपने लिए सपनों की एक दुनिया बना रखी है, जो बहुत ही सुन्दर और बहुत ही सुखद है। परन्तु इस कल्पना-जगत में रहते हुए वह अपने लिए कोठी तो दूर, एक झौंपड़ी भी नहीं बना सका। इस उदाहरण से प्रकट है कि उन्नति के लिए केवल सपने देखना ही काफ़ी नहीं है। कल्पना महलों की ठोस धरती पर नींव रखने और दीवारें

खड़ी करने की जरूरत है।

बीसियों काम ऐसे हैं, जिन्हें आप अपने खाली समय में करके अपनी आए की वृद्धि कर सकते हैं आप के देखते ही देखते क्लर्कों ने शाम के समय कालेज में पढ़कर वकालत पास करली है, और अब सफल वकीलों में गिने जाते हैं। कितने ही नार्मल पास अध्यापकों ने घर बैठे डिग्रियाँ प्राप्त की हैं, और अब कालेजों में प्रोफेसर हैं, या सरकारी अफ़सर बन चुके हैं। इसलिए बुरी आदतों के स्थान पर अच्छी आदतें अपनाने में त्रुटि न कीजिए।

मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि आदतों में परिवर्तन के लिए अपने संकल्प की घोषणा करते रहना भी उपयोगी होता है। इसमें संदेह नहीं कि व्यक्ति जब अपने मित्रों और सम्बंधियों के सामने कोई शपथ ग्रहण करता है, तो यथासाध्य उस पर दृढ़ रहने की चेष्टा भी करता है। मनुष्य स्वभावतः इस बात को पसन्द नहीं करता कि उसे हेठा और अविश्वसनीय समझा जाए। अवश्य इस विषय में कुछ लोगों की दृढ़ता हठधर्मी की हद तक भी बढ़ जाती है, जो फ़ायदे की बजाए उल्टा नुकसान करती है। इस लिए व्यर्थ की क़समें नहीं खानी चाहिएं, और यदि कभी भावावेश में ऐसा हो जाए, तो बुद्धिमता से काम लेकर उसमें परिवर्तन करने की क्षमता होनी चाहिए।

इतनी बात हमेशा याद रखिए कि आप मनुष्य हैं, और आप को विचार और संकल्प को असीम शक्ति प्रदान की गई है। आप जो चाहें कर सकते हैं, और जिस आदत को चाहें, बदल सकते हैं। आप किसी काम को सम्पन्न करने, अथवा उद्देश्य को सिरे चढ़ाने का संकल्प करलें, तो दुनिया की कोई ताकत आपको सफलता प्राप्त करने से रोक नहीं सकती। आदतों में परिवर्तन तो मामूली बात है, आप चाहें, तो कठिन से कठिन अभियान में भी सफलहो सकते हैं। जरूरत केवल इतनी है कि आप दृढ़ता से काम लें।

सोचिए और आत्मविश्वासी बनिए

सोच-विचार और आत्मविश्वास में अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य को तब तक अपने पर विश्वास नहीं हो सकता, जब तक कि वह किसी काम को उत्तम रीति से करने की योग्यता न रखता हो। और योग्यता तभी पैदा हो सकती है, जब वह अपनी समस्याओं का हल और अपनी सफलता के उपाय ढूंढ़ सकता हो। दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनके पास पूंजी भी है, और वे सुशिक्षित भी हैं। परन्तु वे कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर सके, जब कि उनके मुकाबले पर कितने ही ऐसे लोग मौजूद हैं, जो उक्त सुविधाएँ नहीं रखते, अर्थात न तो किसी विश्वविद्यालय के सनातकोत्तर शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं, न जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते समय उनके पास पूंजी होती है। परन्तु वे कला-कौशल, विज्ञान व उद्योग अथवा व्यापार-जगत में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। उन में से कुछ ऊँचे पदों पर पहुँचते हैं, और कुछ बड़े-बड़े कारखानों के मालिक बनते हैं। अतीत के महापुरुषों में बहुसंख्या उन लोगों की है, जो निर्धन परिवारों में जन्म लेने के बावजूद अपने महान कृत्यों के कारण प्रसिद्ध हुए हैं, और आज तक उनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है, जब कि उनके समकालीन धनिकों और सृष्टिपुत्रों के नाम तक से कोई परिचित नहीं है। इस अंतर का कारण केवल यह है कि उत्तरोक्त श्रेणी के लोग सोच-विचार का कष्ट नहीं करते थे, जबकि पूर्वोक्त

लोग चिंतन-मनन को अपने जीवन की बहुमूल्य निधि समझते थे, और उसी के सहारे प्रसिद्धि-शिखर पर पहुँचने में सफल हुए।

यों तो इस दुनिया में ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम ही होगी, जिन्हें प्रसिद्धि और नाम, यश की लालसा न हो, परन्तु मुश्किल यह है कि अधिकतर लोगों को यह मालूम ही नहीं होता कि वे अपने को पहचान कर और अपनी योग्यता से काम लेकर बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। इसकी बजाए वे स्वयं को सदैव तुच्छ, निर्बल और अयोग्य ही समझते रहते हैं। उनके विचार में कोई उपयोगी आविष्कार अथवा उत्कृष्ट कल्पना उनके बस की बात नहीं, इसलिए वे सदैव दूसरों पर निर्भर किए रहते हैं, और दूसरों की योग्यता देख ईर्षा अनुभव करते हैं।

उन्हें कहा जाए कि यदि वे सोचने-समझने का कष्ट करें, और परिश्रम का मार्ग अपनाएं तो दुनिया के बड़े से बड़े सफल व्यक्ति के समतुल्य बन सकते हैं, तो वे तुरन्त उत्तर देते हैं कि यह असम्भव है। हम जैसे अज्ञानी अयोग्य व्यक्ति महापुरुषों की पंक्ति में कैसे बैठ सकते हैं, विशेषकर जब हमें महानता प्राप्त करने के अवसर ही प्राप्त नहीं हैं। इन बेचारों को पता ही नहीं होता कि सृष्टिकर्त्ता ने प्रत्येक मनुष्य को सोचने समझने की शक्ति प्रदान कर रखी है, जिससे यदि सही काम लिया जाए, तो मनुष्य आश्चर्य-जनक कार्य कर सकता है। दरअसल यह उनकी अज्ञानता ही है, जो न तो उन्हें अपनी वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने देती है, और न अपने पर विश्वास करके कोई मूल्यवान कार्य करने के योग्य बनने देती है। इसलिए वे दुनिया के बाजार में तुच्छ, अयोग्य और निर्धन बनकर रहते हैं, और इसी अवस्था में अंतिम यात्रा करते हैं।

'जो सोचते हैं, वे करते हैं', 'जो चिंतन मनन के अभ्यस्त होते हैं। वे सफलता के द्वार में प्रवेश करते हैं। अपने मन में डूबकर

पाले सुराग़ जिन्दगी, 'सोचिए और धनवान बनिए' इत्यादि कथनों की सत्यता से केवल वही लोग इन्कार कर सकते हैं, जो स्वयं सोच-विचार के अभ्यस्त नहीं हैं, और जो नहीं जानते, कि मनुष्य को प्रकृति ने असाधारण बौद्धिक शक्ति प्रदान की है। परन्तु जो लोग मानवी महानता को स्वीकार करते हैं, उन्हें इन उक्तियों की सत्यता पर विश्वास करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, और उन्हें केवल इस तथ्य को स्वीकार ही नहीं करना चाहिए, बल्कि स्वय भी सोच-विचार की आदत डालनी चाहिए। ताकि अपने परिश्रम का उपयुक्त पुरस्कार प्राप्त कर सकें।

वास्तविकता यह है कि हमारा जीवन हमारे विचारों का प्रतिबिम्ब होता है। हमारा सुख-असुख, सफलता या असफलता हमारे विचारों पर निर्भर करती है। जो लोग अपना कार्य मार्ग सोच समझ कर चुनते हैं, अपने व्यवसाय को उन्नत करने के विषय में गहन विचार करते हैं, वे अवश्य ही सफल होते हैं। उन्हें चूँकि विश्वास होता है कि उन्नति का जो मार्ग उन्होंने अपनाया है, वह सीधा सफलता के रंग-महल को जाता है, इस लिए वे संघर्ष में कोई कसर नहीं उठा रखते। परन्तु जो लोग सोच-विचार को कोई महत्व नहीं देते, और बिना सोचे-समझे किसी कारबार में पूँजी लगा देते हैं, वे शायद ही कभी सफलता का मुँह देख पाते हैं। परन्तु याद रखिए, मनोवांछित परिणाम केवल उसी सोच-विचार के हो सकते हैं, जो स्वस्थ और सुस्थित हो, और जिस से लाभ उठाने के लिए आवश्यक सामग्री भी जुटाई गई हो। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए।

मोहन यह लेख पढ़ता है, और सोच-विचार के महत्व से प्रभावित होता है। इसके बाद वह तुरंत ही इस समस्या पर विचार शुरू कर देता है कि उद-जन् बम से भी ज्यादा विनाश-

कारी अस्त्र कैसे बनाया जा सकता है । मोहन विज्ञान का विद्यार्थी नहीं है । उसे यह भी मालूम नहीं कि 'आण्विक शक्ति' क्या होती है, और कहाँ से और कैसे उपलब्ध की जा सकती है। न उसे यह पता है कि उदजन् बम क्या होता है, और उसे कैसे तैयार किया जाता है । परन्तु वह विचार करने लगा है उदजन बम से भी ज्यादा विध्वंसक बम बनाने की समस्या पर । अब आप ही बताइए कि ऐसे सोच-विचार का क्या परिणाम निकल सकता है । वह चाहे घंटों इस समस्या पर सिर खपाता रहे, पर उसकी मेहनत अकारथ ही जाएगी । इसलिए नहीं कि मोहन सोच-विचार की क्षमता नहीं रखता, अथवा बौद्धिक योग्यता में किसी से हीनतर है, बल्कि इसलिए कि मोहन ने इस प्रकार की समस्याओं पर विचार करने के लिए आवश्यक सामग्री, अर्थात उपयुक्त ज्ञान उपलब्ध नहीं किया । अब वह हज़ार सिर पटके, लाख विचार सागर में डुबकी लगाए, पर 'नए आविष्कार' के मुक्ता उसके हाथ नहीं आएँगे ।

मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का कहना है कि मानवी मन की दो दशाएँ अथवा परतें होती हैं । एक दशा वह है, जिसकी गति-विधि से हम अवगत रहते हैं । इसे ज्ञान अथवा चेतना कहते हैं । इसके माध्यम से हम वस्तुओं के सम्बन्ध में जानकारी अथवा अनुभव प्राप्त करते हैं, और अपनी इच्छा, सकंल्प अथवा विचार की अभिव्यक्ति करते हैं । जब हम जागृत अवस्था में होते हैं, तो हमारी चेतना क्रियाशील रहती है । दूसरी दशा को अचेत मन कहते हैं । इस की प्रक्रियाओं से हम अनभिज्ञ रहते हैं । परन्तु इसी के द्वारा हमारे शरीर की विभिन्न आंतरिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं ।

हमारा चेतन मन इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान उपलब्ध करता है, वह अचेतन मन में संचित होता रहता है, जहाँ से उन्हें आव-

श्यकता पड़ने पर चेतना स्तर पर लाया जा सकता है। अचेतन मन एक प्रकार का गोदाम है, जहाँ जीवन की अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ और अभिलाषाएँ सुरक्षित रहती हैं। इस गोदाम के एक कोने में एक 'कार्यालय' है, जहाँ विचारों का निर्माण होता है। इन विचारों के लिए 'कच्चा माल' वे अनुभूतियाँ और जानकारी हैं, जो अचेतन मन में सुरक्षित रहती हैं। इस से स्पष्ट है कि अचेतन मन में जिस प्रकार की सामग्री संचित रहेगी, वैसे ही हमारे विचार होंगे। यदि कपड़े के कारखाने में अच्छी रूई प्रयुक्त होगा, तो अच्छा कपड़ा तैयार होगा। इसके विपरीत यदि कपास घटिया किस्म की होगी, तो उत्तम कोटि का कपड़ा तैयार होने की आशा नहीं की जा सकती। इसी तरह हमारे विचार उतने ही अच्छे या बुरे हो सकते हैं, जितनी अच्छी अनुभूतियाँ और सद-ज्ञान हमारे अचेतन मन में संगृहीत रहेंगे।

यदि आप चाहते हैं कि उत्तम विचार, और सुझाव सोच सकें, तो फिर अपने अचेतन मन के संग्रहालय को सद-ज्ञान से पूर्ण करने में खूब परिश्रम कीजिए। जिस समस्या का हल आप मालूम करना चाहते हैं, पहले उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कीजिए। और फिर उस पर सचेत रूपसे खूब सोच-विचार कीजिए। उसके बाद अपनी सारी जानकारी और चिंतन के परिणामों को अचेतन के सुपुर्द कर दीजिए। बाकी काम वह स्वयं ही कर लेगा।

दुनिया में जितने भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक, विद्वान, आविष्कारक और साहित्यिक हो गुजरे हैं, उनकी सफलता और महानता का रहस्य यही है कि वे अपने अचेतन मन को उत्तम कोटि की सामग्री उपलब्ध कराते थे। वे वर्षों तक गहन अध्ययन में संलग्न रहते थे, और ज्ञान-विज्ञान की जिस शाखा में उन की रूचि थी, उसके सम्बन्ध में उन्होंने प्रायः सभी प्राप्य जानकारी

उपलब्ध की, प्रामाणिक पुस्तकों का अध्ययन किया, अपने समकालीन विद्वानों से विचार-विनिमय किया, अनिर्णीत समस्याओं पर दीर्घ काल तक चिंतन किया, और उसके बाद अपने सारे ज्ञान और निष्कर्षों को अचेतन मन के समर्पित कर दिया जहाँ से वे नए आविष्कारों और रचनाओं का अंतिम रूप धारण करके चेतना पटल पर प्रकट हुए। इन महानुभावों को सफलता इस तरह मिली

ज्ञान-विज्ञान की तरह व्यवसाए में सफलता के लिए भी इसी सिद्धांत पर आचरण किया जाता है, भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और उद्योगपति श्री विश्वेश्वरिया लिखते हैं। कि उत्तम विचारों और दुर्लभ सुझावों की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक जानकारी उपलब्ध करने का प्रयत्न कीजिए। अपने अचेतन मन के लिए उत्तम कोटि का, कच्चा माल संचित कीजिए, और उसपर देर तक विचार कीजिए। यदि आप ने अपने जीवन-पथ का चुनाव करने में ग़लती नहीं की, अपने काम में रुचि लेते हैं, और उसे सम्पन्न करने की योग्यता रखते हैं, तथा अपनी समस्याओं को हल करने में इस सिद्धांत पर चलते हैं, जिसका स्पष्टीकरण ऊपर किया गया है, तो फिर आप कठिन से कठिन समस्या का भी हल निकाल सकते हैं।

इस विवरण से यह निष्कर्ष निकलना अनुचित न होगा कि प्रसिद्धि और महानता किसी की जागीर नहीं है। जो लोग संघर्ष करेंगे, अपने अचेतन मन को उत्तम प्रकार का 'कच्चा माल' उपलब्ध कराएँगे, और अपने मनपसन्द विषय अथवा व्यवसाए में उन्नति और सफलता की सम्भावनाओं पर विचार करेंगे, वे कठिन समस्याओं का समाधान करने में असफल नहीं होंगे। यहीं इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखना चाहिए कि अचेतन मन तक प्रत्येक मनुष्य की पहुँच सम्भव है। इसका प्रमाण यह

है कि कभी कभार आप को ऐसी कठिनाई आ पड़ती है कि उस से निकलने का कोई मार्ग ही सुझाई नहीं देता। परन्तु अंततः आप अपने सामर्थ्यानुसार कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं। इससे भी ज्यादा सरलबोध प्रमाण यह है कि किसी प्रिय मित्र का नाम भूल जाते हैं। आप दिमाग पर जोर देते हैं, और नाम याद करने की लाख चेष्टा करते हैं, परन्तु आप के सब प्रयत्न विफल होते हैं। कुछ दिन बाद बाग़ में टहलते अथवा स्नान करते समय आप को अनायास ही वह नाम याद आजाता है। जिसका अर्थ वह है कि यह नाम आपके अचेतन मन में सुरक्षित था, और वहाँ से आप को हर वक्त सहायता मिल सकती है। इसलिए इस भ्रम में कभी न रहिए कि अचेतना तक पहुँच केवल महापुरुषों के वश की बात है। इस चेतावनी की आवश्यकता है क्योंकि दुनिया में अधिकतर लोग केवल इसलिए अपनी योग्यता का प्रदर्शन नहीं कर सकते, और कोई बड़ा काम सम्पन्न नहीं कर सकते क्योंकि उनके ख्याल में ज्ञान-विज्ञान और मौलिकता के जगत में नाम अर्जित करना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं। यह योग्यता ईश्वर-दत्त ही होती है, और इस में व्यक्तिगत चेष्टा का कोई हाथ नहीं होता।

इस भ्रम में कभी मत पड़िए। आप चाहें, और परिश्रम करें तो पिछले महापुरुषों की तरह आपभी मौलिकता और नवीनता के क्षेत्र में अपने अपूर्व कृत्यों से सारी दुनिया को आश्चर्यचकित कर सकते हैं। परन्तु आपको यह सम्मान तभी प्राप्त होगा, जब आप पहले अपने अन्दर आविष्कार-क्षमता पैदा करें, विश्व-विख्यात वैज्ञानिकों और विद्वानों की तरह ज्ञानोपार्जन करें, और अपने प्रिय विषय पर सोच विचार करें। यदि अब तक आप कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके, तो इसलिए नहीं कि आप असमर्थ या अयोग्य हैं, और आविष्कार को क्षमता नहीं रखते, बल्कि

इसलिए कि अभी तक आपने उस निधि का उपयोग नहीं किया, जो प्रकृति ने आपको बड़ी उदारता के साथ प्रदान की है। इस धारणा की पुष्टि न्यूटन की सफलता से होती है।

सर आईज़िक न्यूटन ने जब एक पके हुए सेब को धरती की ओर गिरते देखकर गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का आविष्कार किया था, तो उस समय तक हज़ारों व्यक्ति दरख़्तों से फल गिरते देख चुके थे। परन्तु किसी ने कभी उसका कारण मालूम करने का कष्ट नहीं किया था। उन लोगों ने अपने अचेतन मन को ऐसा 'कच्चा माल' उपलब्ध नहीं कराया था, जिसकी सहायता से वे पके हुए फल को टूट कर गिरते देख अपने से प्रश्न करते कि ऐसा क्यों होता है। उनके लिए इस में कोई अचंभे की बात नहीं थी। इसलिए उनके अचेतन मन ने इसका उत्तर देने की आवश्यकता भी अनुभव नहीं की। परन्तु न्यूटन 'क्यों' कहे बिना न रह सका। कारण वह वर्षों से अपने ज्ञान-भंडार को भर रहा था, और उसने अपने अचेतन मन के गोदाम को उत्कृष्ट प्रकार के 'कच्चे माल' से परिपूर्ण कर रखा था। अतः जब उसने अपने मन से प्रश्न किया, तो उसे सही उत्तर मिलने में देर न लगी।

मि० बर्टरैंड रसल कहते हैं कि जब मैं किसी गूढ़ विषय पर लेखनी उठाना चाहता हूँ, तो पहले उसपर अच्छी तरह विचार करता हूँ, और अपनी पूरी बौद्धिक योग्यता को उसके सब रहस्यों की जानकारी प्राप्त करने पर लगता हूँ। उसके बाद उस विषय और उसपर अपने सोच-विचार के परिणामों को अचेतन मन के सिपुर्द कर देता हूँ। इन उदाहरणों से प्रकट है कि न्यूटन् और रसल की सफलता उनके सोच-विचार की देन है। और सोच-विचार की शक्ति अमीर-गरीब सबके लिए प्राप्य है।

सोच-विचार के लिए चुनाव अत्यंत महत्व रखता है। इस

अध्याय के प्रारम्भ में मोहन का उदाहरण दिया गया है, जो विज्ञान का विद्यार्थी न होने पर भी अपनी विचार शक्ति एक ऐसी समस्या पर व्यय करता है, जिस का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। परिणामतः कुछ भी उसके पल्ले नहीं पड़ता। इसलिए यदि आप सोच-विचार करने को तैयार हैं, तो मोहन का अनुसरण न कीजिए। और केवल उसी विषय या काम में अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने की चेष्टा कीजिए, जिसके सम्बन्ध में आपको पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो, अन्यथा आपको सफलता नहीं मिलेगी। यदि न्यूटन गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत आविष्कृत करने को बजाए कोई नाटक या महाकाव्य लिख कर प्रसिद्धि के रंगमहल में प्रवेश करने की चेष्टा करता, तो शायद आज उसका नाम भी किसी को मालूम न होता। इसलिए पहले अनुकूल विषय का चुनाव कीजिए, उसके सम्बन्ध में सब आवश्यक जानकारी प्राप्त कीजिए, और उसके बाद अपनी सारी शक्ति और साधन उसमें सफल होने पर लगा दीजिए। उदाहरण के लिये यदि आप उच्च कोटि के साहित्यिक बनने की योग्यता रखते हैं, तो आपको राजनीति पर अत्यधिक विचार आरम्भ नहीं करना चाहिए, बल्कि साहित्य का अध्ययन करना चाहिए।

सोच-विचार के अच्छे परिणाम कभी-कभी इसलिए नहीं निकलते कि व्यक्ति किसी समस्या पर विचार आरम्भ करता है, तो बीच में कोई और काम आ पड़ता है, जिसे टाला भी नहीं जा सकता। उससे निवृत्त होकर जब फिर विचार शुरू करता है। तो विचारों की शृंखला जोड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। इस उलझन से बचने का उत्तम उपाय यह है कि जब आप किसी महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने बैठें, तो अपने विचारों को लिपि-बद्ध करते जाएँ। बेहतर तो यह है कि काग़ज को दो भागों में बाँट लें, और उन में अनुकूल और प्रतिकूल

दोनों तरह के विचार लिखते जाए। ताकि जब पुनर्विचार का समय आए, तो एक ही नज़र में मालूम हो जाए कि आप कहाँ तक पहुंच चुके थे। यह क्रम यदि कई दिन तक जारी रहे, तो भी कोई हर्ज नहीं। ऐसे विचारों को अवश्य रद्द कर देना चाहिये, जो बाद के सोच-विचार से त्रुटिपूर्ण सिद्ध हों, और उन के स्थान पर नए विचार लिखने चाहिए। जब आप अनुभव करें कि नवीन विचारों का क्रम रुक गया है, तो एक बार फिर अपने सब विचारों की समीक्षा करें—और फिर इस सारी सामग्री को अपने अचेतन के सपुर्द कर दें, और कुछ दिनों के लिये उस समस्या को बिल्कुल भूल जाएं। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि लिपिबद्ध विचारों के मसोदे को फ़ेंकना नहीं चाहिये, बल्कि किसी सुरक्षित स्थान पर रख देना चाहिये, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसका अध्ययन किया जा सके।

यहाँ पहुँच कर चेतना का कार्य समाप्त हो जाता है। अब अचेतन में विचार परिपक्व होते हैं, और किसी भी समय समस्या का हल या सही सिद्धांत चेतना स्तर पर प्रकट हो सकता है, यदि कुछ दिनों तक आपके प्रयत्न सफल न हों, तो घबराने की कोई जरूरत नहीं है। हताश होने की बजाए अपने विचारों पर फिर एक बार दृष्टिपात कीजिए। हो सकता है कि इस तरह कुछ और पक्ष प्रकाश में आएँ, और वही निर्णायक सिद्ध हों।

ठोस सोच-विचार के लिये मित्रों, सम्बंधियों और सहयोगियों के साथ विचार-विनिमय भी लाभप्रद होता है। बड़ी-बड़ी सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओं की ओर से सम्मेलन और विचार-गोष्ठियाँ इसी उद्देश्य के दृष्टिगत आयोजित की जाती हैं, विचार-विनिमय के समय सब पक्षों की बात ध्यान से सुनिए। उनके मतों का विश्लेषण कीजिए। आपके सुझाव पर जो आपत्तियाँ उठाई जाएँ, उनका उत्तर देने की चेष्टा कीजिये।

इस विधि से सोचने पर आपके अचेतन को निर्णय करने में बड़ी सुविधा होगी।

जब किसी समस्या पर देर तक विचार करने से मस्तिष्क क्लांत हो जाए, और अधिक विचार करने को जी न चाहे, तो दिमाग़ पर अकारण ज़ोर न डालिये, बल्कि तत्काल अपना ध्यान किसी दूसरे कार्य में लगाइये। थकावट सोच-विचार की दुश्मन है। शिथिल मस्तिष्क से यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि वह सोच-विचार का काम उत्तम रीति से कर सकेगा। अचेतन तभी काम कर सकता है, जब मस्तिष्क स्वस्थ अवस्था में हो।

यह काम प्रारम्भ में बहुत कठिन मालूम होगा। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में आप के इच्छा के अनुसार कोई सुखद परिणाम न निकले, परन्तु ज्यों-ज्यों आपको सोच-विचार का अभ्यास होता जाएगा, त्यों-त्यों आप अपना काम सरल पाएंगे, और सहज ही में अपनी समस्याओं का हल निकाल लेंगे।

"खूब सोच-विचार के बाद समस्या को भूल जाइये, आमोद प्रमोद, पर्यटन या और किसी मनोरंजक क्रीड़ा में भाग लीजिए—मैं इस बात को फिर दुहराता हूँ, और आपको परामर्श देता हूँ कि विश्राम, मानसिक शांति, और चिंताशून्यता को कभी महत्वहीन समझिये। इन्ही क्षणों में आपकी विचार शक्ति पुनर्जीवित होगी। चन्द क्षणों में जब आप आरामकुर्सी पर लेटे होंगे और अतीत की किसी सुहावनी अनुभूति अथवा सुखद घटना स्मृति से मन बहला रहे होंगे, बाग़ीचे में टहलते होंगे, अथवा समुद्रतट पर बैठे लहरे गिन रहे होंगे—अवकाश और बेकारी के यही क्षण आपके लिये हितकर सिद्ध होंगे।

इस सिद्धत की सभी मनोविज्ञान-विशेषज्ञ पुष्टि करते हैं।

वे कहते हैं कि कोई अच्छा विचार या नवीन सुझाव का आविष्कार करने के लिये आवश्यक है कि जब मनुष्य समस्या पर संतोषजनक रूप से विचार कर चुके, तो कुछ देर के लिये उसे भूल जाए, और अपना ध्यान किसी और दिशा में लगाए। एक पाश्चात्य विद्वान लिखता है कि "बुद्धिमान विचारक किसी शास्त्रीय समस्या पर इतना विचार नहीं करता कि मस्तिष्क की शक्तियों का अंत हो जाये, और न किसी समस्या पर विचार करने के तुरंत बाद किसी कठिनतर समस्या पर आरम्भ करता है।" दूसरे विचारकों और उपाय-शास्त्रियों के कथन और आचरण से भी इस दृष्टिकोण की पुष्टि होती है।

अमरीका के भूत पूर्व प्रधान मि० ट्रूमैन अपनी डायरी में लिखते हैं कि मैं क्षोभ से साधारणतः कम ही प्रभावित होता हूँ। परन्तु प्रधान रूज़वेल्ट् की मृत्यु से मुझे वस्तुतः बहुत ही आघात पहुँचा। और यह देखते हुए इसकी और वृद्धि हुई कि प्रधान-पद का भारी बोझ अब मेरे कंधों पर पड़ने वाला था। मुझे मालूम नहीं था कि जिस व्यक्ति को सारा देश देवता-समान पूजता है, उसके निधान पर देशवासियों की क्या प्रतिक्रिया होगी, और न मुझे इस बात की जानकारी थी कि इस महान दुर्भाग्य का युद्ध की गति, युद्धोपयोगी सामग्री की तैयारी और अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह तो मैं जानता था कि स्वर्गीय प्रधान ने मि० चर्चिल और मार्शल स्टालिन से कई बार भेंट की थी। परन्तु इन सम्मेलनों में कौनसी समस्याओं और क्या-क्या विषयों पर वार्ता हुई, और क्या निर्णय किए गए, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं था। मैं इन चिंताओं का सामना करने में स्वयं को बिल्कुल असमर्थ पा रहा था। अतः मैं चिंताओं में डूबने की बजाए सीधा अपने घर चला गया। संगीत से आनन्दित होता रहा। फिर अपने परिवार के साथ खाना खाया,

और सो गया ।

यही कार्य-विधि मि० ट्रूमैन की समस्या का सही हल थी। इसकी उपयोगिता की आप कभी उपेक्षा न कीजिए । विश्राम और मनोरंजन मानसिक उलझनों का सर्वोत्तम उपचार है । ये नवीन और उत्कृष्ट विचारों के आगमन के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करते हैं। शायद ही किसी वैज्ञानिक को कोई नया विचार अथवा नवीन सिद्धांत उस समय सूझा हो, जब वह अपनी प्रयोगशाला में कार्यरत हो। सभी बड़े आविष्कार विश्राम के समय हुए हैं, अथवा किसी दूसरे कार्य में संलग्न होने की अवस्था में । न्यूटन द्वारा गुरुत्वाकर्षण और प्राचीन यूनानी दार्शनिक आर्शमिदस द्वारा जल में वस्तुओं का भार घटने के सिद्धांत का आविष्कार इसके दो प्रकट उदाहरण हैं। विश्व के महान विचारकों, दार्शनिकों और महाकवियों का सर्वसम्मत निर्णय है कि जब नवीन विचारों का आगमन रुक जाए, तो सोचना छोड़ कर बगीचे में टहलना चाहिए।

हमारे राष्ट्रीय नेताओं में महात्मा गांधी से लेकर वर्तमान प्रधान मंत्री पं० नेहरू तक सभी इस नियम का पालन करते रहे हैं। गाँधीजी अपनी जिस शक्ति को 'आंतरिक ध्वनि' कहते थे, वह वास्तव में उनका अचेतन मन ही था । वह समस्या पर विचार करने के बाद उसे अपने अंतःकरण पर छोड़ देते थे। और शीघ्र ही उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाता था। पं० नेहरू का यह नियम सा है कि उन्हें जब कभी गहन सोच-विचार करना हो, वह अपने नित्य कार्य से अवकाश ले लेते हैं, पहाड़ पर चले जाते हैं, या किसी एकांत स्थान पर जा बैठते हैं । चन्द दिनों तक वह खूब सोचते हैं, और जो कुछ करना है, उसका निर्धारण करते हैं। उसके बाद वह किसी पाठशाला या आश्रम में जाकर बच्चों के साथ खेल-कूद में मग्न हो जाते हैं। किसी जंगली क्षेत्र

में हों, तो आदिवासियों के संग नाचते-गाते हैं, और इस प्रकार स्वयं को नई शक्ति और स्फूर्ती से प्रेरित करके गम्भीर कार्य की ओर प्रवृत्त होते हैं । तब उन्हें सही दिशा में कदम उठाते हुए किसी प्रकार के संकोच या अनिश्चितता का अनुभव नहीं होता । उनका अचेतन स्यंवमेव ही उन्हें सही दिशा का ज्ञान उपलब्ध कराता है ।

क्लांति के अतिरिक्त व्यग्रता और शोक-क्रोध भी सफल विचार में बाधक होते हैं। आप उद्विग्नता की अवस्था में किसी गम्भीर समस्या पर विचार नहीं कर सकते, न कोई योजना संगठित कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में सोचना न सोचने से भी ज्यादा अहितकर है, क्योंकि जब अस्थिर मन के साथ किसी समस्या पर विचार करने के बाद उपयोगी परिणाम नहीं निकलते, तो मनुष्य भयभीत हो जाता है, और वह अनुभव करने लगता है कि वह कठिन समस्याओं पर सोच-विचार करने की योग्यता ही नहीं रखता । इस प्रकार वह अपनी उन्नति की सब सम्भावनाओं का अंत कर देता है ।

दुश्चिंताओं को वर्तमान युग का सब से घातक रोग समझा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि आज का समुन्नत मनुष्य सुख और शांति की खोज में मारा-मारा फिरता है, परन्तु चिंताएँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं । अमरीका के एक अरबपति के सम्बंध में बतलाया जाता है कि वह अपना आधा धन ऐसे व्यक्ति को देने पर तैयार था, जो उसे रात के समय मीठी नींद सुला सके । एक और अरबपति भूख न लगने के शोक में रो-रो कर मर गया । इनका इलाज किसी चिकित्सक के बस का रोग नहीं था । क्योंकि दुश्चिंताओं के कारण उन्होंने जो बीमारियाँ स्वयं को लगा ली थीं, उनकी औषधि किसी डाक्टर के पास नहीं, स्वयं उन्ही के पास थी, परन्तु वे उसका सेवन करने में असमर्थ

थे। वर्तमान युग में आत्महत्या की घटनाएं भी पहले की अपेक्षा इसी कारण ज्यादा होती हैं, कि आजका मनुष्य अधिक चिंता-ग्रस्त और अशांत है। इस मानसिक अशांति और व्यग्रता के कारण वह ठीक से सोच नहीं सकता कि उसे क्या करना है। परेशानी की हालत में सोचना बिल्कुल फ़ज़ूल है। विश्वास न हो, तो किसी मित्र के पास जाइए, जो परेशान हो, और उससे कहिए कि किसी जटिल समस्या को सुलझाने में सहायता करे। वह तुरंत उत्तर देगा कि इस समय मैं परेशान हूँ, इसलिए क्षमा चाहता हूँ। फिर किसी वक्त आइए। जब मेरा दिमाग ठिकाने हो।' आपका दोस्त ग़लत नहीं कहेगा। वास्तव में वह उस समय आपकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता।

गरज़ परेशानी इन्सान की योग्यता पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। यही दशा उस समय होती है, जब मनुष्य उत्तेजित या क्रोधित हो। आए दिन हत्याकांड होते हैं जो मुख्यतः उत्तेजना का दुष्परिणाम हैं। हत्यारा हत्या कर बैठता है, और उसके बाद पछताने बैठता है। क्रोध और उत्तेजना से बुद्धि का लोप होता है। अब आप स्वयं ही विचार कीजिए कि जब क्रोधावेश में हत्या जैसे घोर अपराध घटित हो सकते हैं, तो इस अवस्था में सदविचार का प्रश्न ही कहाँ उठता है। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं कि सोच-विचार के सुपरिणाम तभी निकल सकते हैं, जब आप आवेश और उत्तेजना को अपने निकट न आने दें। व्यग्रता चूँकि एक मानसिक दशा है, इसलिए उससे बचने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि आप तत्काल किसी दूसरे काम में व्यस्त हो जाइए। परेशानी में अधिकतर अभावात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। इसलिए उनपर काबू पाने के लिए भावात्मक विचारों का सहारा लीजिए। अर्थात कोई आनन्ददायक या हास्यरस-युक्त बात सोचिए। हँसिए और खुश होइए, अथवा

किसी ऐसी क्रीड़ा में तन्मय हो जाइए, जो आपको किसी दूसरी उलझन में डाल दे, जैसे शतरंज की बाज़ी कैसे जीती जाए, या टूटी हुई मेज़ को ठीक कैसे किया जाए।

यदि आपकी दुश्चिंताओं का सम्बंध आर्थिक स्थिति या किसी ऐसी जटिलता से है, जो तात्कालिक हल चाहती है, तो अपनी कठिनाई का तटस्थ होकर निरीक्षण कीजिए, और यों सोचिए कि यह समस्या आप की नहीं, किसी दूसरे की है, और वह आप से इसे हल करने में सहायता चाहता है। इस तरह आप फ़ौरन् ही मूल समस्या को देख सकेंगे। बहुधा हम जिस समस्या या कठिनाई के कारण परेशान हो जाते हैं, वास्तव में वही हमारी समस्या नहीं होती, बल्कि समस्या कुछ और ही होती है, और अकारण ही गौण बातों में पड़ कर अपना समय और शक्ति नष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए आपको तीन दिन के अन्दर मकान का किराया अदा करना है। अब आप यदि यों सोचने बैठें कि "यह तो बड़ी मुसीबत है। भला तीन दिन में किराया कैसे अदा किया जा सकता है। यह मालिक मकान कितना दुष्ट है। अब देखो, यदि मैं किराया न दे सका तो मुझे मकान खाली करना होगा। भला यह भी कोई इन्साफ़ है। मुझे बाल-बच्चों समेत सड़क पर बैठना होगा। भगवान जाने मेरी क्या दशा होने वाली है, इत्यादि। अब आप ही बताइए, इस प्रकार के विचारों का क्या फ़ायदा! ज़रा तटस्थ होकर सोचें, तो आप पर सहज ही में प्रकट हो जाएगा कि असल समस्या किराए की माँग या मालिक मकान की दुष्टता नहीं है, बल्कि समस्या कुछ रुपयों की है, अर्थात आपको तीन दिन के अन्दर एक निश्चित रक़म का प्रबन्ध करना है, तो फिर यों क्यों नहीं सोचते कि इतनी रक़म इस समय के भीतर किन-किन उपायों से उपलब्ध की जा सकती है। कहने का मतलब यह है कि आप मालिक

मकान की नीचता सम्बन्धी व्यर्थ के विचारों को छोड़ कर मतलब की बात सोचिए एक दिन खूब सोचिए। और रुपया हासिल करने के सब सम्मलित उपायों की छानबीन कर लीजिए। दूसरे दिन इस समस्या पर जरा भी ध्यान न दीजिए और अपने काम में मस्त रहिए। तीसरे दिन आपको या तो रुपया मिल जाएगा, या फिर मालिक मकान से दो-दो हाथ करने की तरकीब सूझ जाएगी। याद रखिए, अचेत मन मनुष्य को कभी धोखा नहीं देता।

कुछ लोग निर्मूल आशंकाओं के कारण आतंकित और चिंता-ग्रस्त रहते हैं। इस प्रकार की दुश्चिंताओं से बचने की सम्भावना निर्भर करती है इस बात पर कि व्यक्ति कितना यथार्थवादी है। जब हम जानते हैं कि हमें एक न एक दिन मरना है और मृत्यु अटल है, तो फिर मरने से सौ बार मरने की क्या जरूरत। युद्ध दुर्भिक्ष महामारी कोई भी कारण हो, मरना एक ही बार है। फिर ऐटम् बम् और हाइड्रोजन् बम के नाम सुन-सुन कर भयभीत होने से क्या लाभ? यदि ऐसी अवस्था में कल्पना-शक्ति का सहारा लिया और अतीत और वर्तमान की सुखद घटनाओं को स्मरण किया जाए, तो ऐसी कल्पित आशंकाएँ बड़ी हद तक कम हो जाती हैं।

कुछ भी हो, इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए कि जहाँ तक सोच-विचार का सम्बन्ध है, भय और आशंका भी वही काम करते हैं, जो व्यग्रता के विषय में बतलाया गया है, अर्थात वे सही विचार में बाधक होते हैं। और सोच-विचार के बिना उन्नति असम्भव है।

पुरानी डगर पर चलने वाले और पक्षांध व्यक्ति न कोई उच्च-विचार प्रस्तुत कर सकते हैं और न कोई नया आविष्कार कर सकते हैं। लकीर की फ़कीरी हमें कभी कोई बड़ा काम

करने का अवसर नहीं दे सकती। वैज्ञानिक, विचारक और आविष्कारक बनने का सौभाग्य उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है, जो स्वतंत्र और विद्रोही होते हैं। रूस आज अन्य समुन्नत देशों से आगे निकल गया है, तो इसका एक मात्र कारण यह है कि वहाँ हर प्रकार की रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष जारी रहता है। वहाँ किसी नए विचार अथवा पद्धति की केवल इसलिए निन्दा नहीं की जाती कि उससे किसी पुरानी धारणा या प्रथा का खंडन होता है। वहाँ हर क्षेत्र में नवीन विचार वालों का आदर सम्मान किया जाता है। यही कारण है कि आज दुनिया भर में जितने वैज्ञानिक और विचारक हैं, उनसे ज्यादा अकेले रूस में हैं।

परन्तु दुनिया के बहुत बड़े भाग में अभी मनुष्य संकीर्ण विचारों और अंधविश्वास पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। मानवता का बहुत बड़ा अंश अभी तक पुरानी परम्पराओं और कुप्रथाओं की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ है। आज जरूरत इस बात की है कि हम श्री नेहरू के शब्दों में अपने दिमाग़ों के पट खोल दें, और जैसे हम राज-नीतिक अर्थों में स्वतंत्र हुए हैं, वैसे ही अपने विचारों और भावनाओं में भी स्वतंत्र हों।

इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे बड़ों ने हमारे कल्याण और पथप्रदर्शन के लिए जो काम किए हैं, उन्हें हम भुला दें, अथवा उनका आदर न करें। निःसंदेह हमें अपने पूर्वजों का सम्मान करना चाहिए, और उन्हें मान देना चाहिए। परन्तु वे जो कुछ कह गए या हमारे शास्त्रों में लिख गए, वह आज भी सही है, ऐसा समझने की ग़लती हमें नहीं करनी चाहिए। सच तो यह है कि नए ढंग से सोचना और नए विचारों को अपनाना एक प्रकार से अपने पूर्वजों का अनुसरण करना ही है, क्योंकि उन्हों ने भी अपने पूर्वजों के विचारों में ऐसा ही संशोधन किया था।

उनकी तरह हमें भी पुराने विचारों का अध्ययन आलोचक की दृष्टि से करना चाहिए। उनकी अच्छाई-बुराई और उपयोगिता-अनोपयोगिता का निश्चय करना चाहिए। और फिर स्वयं अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत करने में संकोच नहीं करना चाहिए। याद रखिए, सफलता का द्वार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं बनाना पड़ता है, यहाँ तक कि उसके बनाए हुए द्वार में से उसकी अपनी संतान भी नहीं गुज़र सकती। इसलिए आप निश्चिंत होकर स्वतंत्र सोच-विचार का मार्ग अपनाइए, और इस बात को कोई महत्व न दीजिये कि आपके विचार पुराने ग्रंथों में लिखे अथवा आपके समकालीन लोगों द्वारा व्यक्त किए जाने वाले विचारों से नहीं मिलते। शायद यही भिन्नता आप की महानता का कारण बन जाए।

सोच-विचार की आदत से मनुष्य को केवल यही लाभ नहीं होता कि वह अपनी समस्याओं का हल मालूम करने के योग्य हो जाता है, और अपनी कठिनाइयों को दूर कर सकता है। बल्कि सब से बड़ा फ़ायदा यह होता है कि इस योग्यता के बल पर उसे अपने पर विश्वास हो जाता है। जब वह अनुभव करता है कि वह हर समस्या का हल निकालता है और कठिनाई पर विजय पा लेता है, तो उसे अपनी शक्ति और श्रेष्ठता का विश्वास हो जाता है। और जैसा कि बतलाया गया, यही आत्मविश्वास सफलता की कुंजी है।

जीवन का संगठन

जीवन के व्यापार से इस तरह निपटना कि जीवन-यात्रा पूरे विश्वास और सफलता के साथ जारी रखी जा सके, आसान काम नहीं है। जब मनुष्य युवावस्था में पदार्पण करता है तो अगणित जिम्मेदारियाँ उसके कंधों पर आ पड़ती है। उसे अपने लिए जीविका का साधन या व्यवसाए चुनना पड़ता है। इसका केवल मनोवांछित होना हो काफी नहीं, वह लाभ-प्रद भी होना चाहिए। जीवन संगिनी का चुनाव भी कम महत्व की बात नहीं, इसमें ज़रा सी ग़लती या असावधानी भविष्य को असुखद बन सकती है। इसी स्थल पर अपनी व्यस्तताओं, क्रीड़ाओं और साथी सम्बन्धिओं का चुनाव भी करना पड़ता है। सारांश यह कि जीवन-निर्वाह के लिए एक निश्चित कार्यक्रम अथवा नित्य व्यवहार को अपनाना पड़ता है। वे विषय और समस्याएँ इसके अलावा हैं, जो अकस्मात उपस्थित हो सकती हैं। इन्ही दिनों में इनका हल मालूम करना और नाना प्रकार की गुत्थियों को भी सुलझाना पड़ता है। प्रकट है कि इस व्यापार में सफलता नहीं मिल सकती, यदि मनुष्य जीने का सलीका न रखता हो। परन्तु तथ्य यह है कि शायद यही एक ऐसी कला या व्यवसाए है, जिसके सीखने सिखाने की तरफ़ सब से कम ध्यान दिया जाता है।

एक शिक्षा विशारद ने उचित ही कहा है कि लोग उन घोड़ों के प्रशिक्षण पर तो बहुत ध्यान देते हैं, जो घुड़दौड़ में भाग लेते हैं, परन्तु अपनी संतान को जीवन की दौड़ में भाग लेने के योग्य बनाने का कोई प्रबन्ध नहीं करते। इसके उत्तर में कहा जाएगा कि मछली को तैरना कौन सिखाता है। जिस तरह वह बड़ी मछलियों को तैरते देख कर तैरना सीख लेती हैं, इसी तरह हमारे बच्चे भी हमें देखकर जीने का ढंग मालूम कर सकते हैं। फिर उन्हें विभिन्न कलाओं की शिक्षा भी तो दी जाती है, इसके बावजूद यदि वे जीने की कला से अनभिज्ञ रह जाएँ, तो दोष हमारा नहीं, स्वयं उनका है। कुछ लोग इस प्रकार के तर्क 'उपस्थित करके भले—ही संतुष्ट हो जाएँ, परन्तु इस सिद्धांत को केवल उसी अवस्था में युक्तिसंगत समझा जा सकता था, जब हम जीवन को इतना जटिल न बनाते। गुफाओं में जीवन व्यतीत करते, दरख्तों की छाल से देह ढाँपते और जानवरों के माँस और जंगली फलों पर गुजारा करते।

मछलियाँ सृष्टि के प्रथम दिन से तैरने और अपना पेट भरने की जो कला जानती हैं, उसमें इन अरबों वर्षों में ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ, न उन्नति हुई। मछलियों ने गगनचुम्बी भवन नहीं बनाए, ऐटम् बम् का निर्माण नहीं किया। उन्होंने 'थल पर' जीवित रह सकने की कला आविष्कृत नहीं की, न हवा के समुद्र में उड़ने की। परन्तु मनु की संतान ने किसी एक अवस्था में रहने पर संतोष नहीं किया। उसके उद्योग से नित्य नए आविष्कार हो रहे हैं, जो जीवन को जटिल बना रहे हैं। इतना जटिल कि एक पत्रकार के शब्दों में 'आज बहुत से नवयुवक केवल इस लिए समय से पहले बूढ़े हो रहे हैं कि वे चौबीसों घंटे क्या होगा' की चिंता में घुलते रहते हैं। ऐसी अवस्था में जीने की कला का महत्व सहज ही में समझा जा सकता है।

जीवन के व्यापार में कुछ लोग केवल इस लिए असफल रहते हैं कि उन्हें बचपन और किशोरावस्था में जीवन-निर्वाह का तरीका सिखाया ही नहीं जाता। वे प्रबल बोध-शक्ति रखते हैं। परिस्थितियों को समझने की योग्यता रखते हैं। उन्हें जो काम सौंपा जाए, उसे कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं। उनमें सफल व्यवसायी, योग्य राजनीतिज्ञ या कुशल कलाकार बनने के सभी गुण होते हैं, परन्तु उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने में पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि वे जीवन-निर्वाह की कला का ज्ञान नहीं रखते।

वे बड़े साहसी होते हैं, कठिनाइयों को कोई महत्व नहीं देते। परन्तु वे कठिनाइयों पर काबू नहीं पा सकते, क्योंकि वे उन्हें अपने मार्ग से हटाने का हुनर नहीं जानते। उन से प्रायः कोई ऐसी ग़लती हो जाती है कि उनकी सब कोशिशें मिट्टी में मिल जाती हैं। उन्हें केवल जीवन का रहस्य न जानने के कारण असफलता का मुँह देखना पड़ता है। निरतंर असफलताएँ उन्हें हताश और भयभीत कर देती हैं, यहां तक कि वे निराश और दुर्भाग्य की मूर्ति बन कर रह जाते हैं।

ये लोग जीवन-क्षेत्र में ऊँचे सिद्धाँतों के साथ प्रवेश करते हैं। ये सत्यपरता निर्भयता, उदारहृदयता और देश सेवा के ऊँचे आदर्शों को अपनाने की शपथ लेते हैं। परन्तु उनका सही उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए शीघ्र ही अनुभव करने लगते हैं कि दुनिया के बाजार में उनके माल की माँग नहीं है। इस तरह संदेह और दुविधा उनके मार्ग का भारी पत्थर सिद्ध होते हैं।

उनकी यह धारणा कि अब ये उच्च मूल्य अनावश्यक हो गए हैं, सही नहीं होती। संसार में आज भी इनके ग्राहक मौजूद हैं। दुनिया आज भी उन व्यक्तियों को सिर आँखों पर बिठाती है, जो सत्य भाषी हों, सत्य निष्ठा हों और

उदारहृदय हों । इन गुणों वाले व्यक्तियों को आज भी सफलता-प्राप्ति में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती । दुनिया के अधिकतर सफल लोग ऐसे ही गुण-सम्पन्न थे । सच तो यह है कि वास्तविक महत्ता के अधिकारी आज भी वही लोग समझे जाते हैं, जिनका लक्ष्य लाभ-उपलब्धि और मान-प्रतिष्ठा प्राप्ति से ज्यादा जन-सेवा और देश कल्याण होता है । परन्तु ये लोग जीवन-यापन की कला से अनभिज्ञ होने के कारण इन गुणों से लाभ नहीं उठा सकते, इसलिए साहस छोड़ बैठते हैं ।

इनकी एक मुश्किल यह भी होती है कि ये अपने लिए कोई लाभदायक कार्य-क्षेत्र नहीं चुन सकते । वे जीवन-पर्यन्त अपने कार्य विभाग बदलते रहते हैं । यह पथभ्रष्टता और घुमक्कड़पन, सम्भव है, शुरू-शुरू में इतना हानिकारक न हो । परन्तु इसे स्थायी रूप से अपनी प्रवृत्ति ही बना ली जाए, तो यह जीवन के अंतिम दिनों में एक भयंकर प्रकोप का रूप धारण कर जाती है ।

जो लोग युवावस्था को पार करने के बाद भी अपने लिए उपयुक्त काम की खोज में रहते हैं, वे कभी सुखी-सम्पन्न नहीं होते सकते । उनका बहुमूल्य समय इसी खोज में व्यय हो जाता है । ये लोग किसी एक काम से सम्बन्ध रखें, तोउल्लेखनोय उन्नति कर सकते हैं । वे नहीं जानते कि सहयोगियों के साथ किस प्रकार का बर्ताव रखना चाहिए । वे शिष्टाचार से भी परिचित नहीं होते, वे मित्रों का चुनाव नहीं कर सकते । वे भरी सभा में भी अकेले ही होते हैं । वे चूंकि कल्पना जगत में बसते हैं, इसलिए व्यवहारिक दुनिया के सामान्य विषय भी उनके लिए कठिन समस्याएँ हैं । वे न तो स्वयं को वातावरण में डाल सकते हैं और न वातावरण को अपने अनुकूल बना सकते हैं । इसलिए उन्हें अपने प्रयत्नों का फल परेशानी के रूप में मिलता है ।

यदि आप इन्हीं लोगों में हैं, यदि माता-पिता के अनुचित

लाड़-प्यार के कारण आप जीने की कला नहीं सीख सके, और अब स्वयं को जीवन-क्षेत्र में अकेला और असहाय पाते हैं, यदि आप सुशिक्षित और बुद्धिमान होने के बावजूद अभी तक अपने कार्य-क्षेत्र का चुनाव नहीं कर सके, और अपने प्रयत्नों को सफल न होते देख हताश हो चुके हैं और संघर्ष को व्यर्थ समझने लगे हैं, तो हथियार डालने की बजाए यह मालूम करने की चेष्टा कीजिए कि आपकी असफलता के कारण क्या हैं। इस अनुसंधान के बाद यदि आप इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आप की असफलता का कारण जीने की कला से अनभिज्ञता है, तो आपको निराश होने की जरूरत नहीं, आप चाहें, और अपने सुधार के लिए तत्पर हो जाएँ तो अब भी इस कला को सीख सकते हैं।

इस तथ्य को कभी न भुलाइए कि जीवन संकटों के इस युग में भी अपने अन्दर मनोरंजन की काफी सामग्री रखता है। उसे प्राप्त करने के लिए जीवन के पुर्नसंगठन पर तत्पर हो जाइये। दृढ़ संकल्प से काम लीजिए और इस विश्वास के साथ आगे बढ़िए कि विजय आपकी है।

जीवन के पुनसंर्गठन के लिये सर्वप्रथम अतीत का अध्ययन आवश्यक होता है। उसका निरीक्षण कीजिये। अतीत में आपसे जो ग़लतियाँ हुई हैं, उनकी एक सूची बनाइये। अपनी अब तक की सफलताओं की भी एक सूची बनाइये दोनों की तुलना कीजिए। आप पर प्रकट होगा कि आपका अतीत इतना निराशजनक नहीं है, जितना कि आपको अपने अन्दर कई कमियाँ और कमजोरियाँ दिखाई देंगी, तो कई अच्छाइयाँ और गुण भी नज़र आएंगे। तब आप महसूस करेंगे कि वास्तव में आप असफल नहीं हैं, आपने जीवन के शिक्षालय से बहुत कुछ उपलब्ध किया है। आप के पास धन-सम्पत्ति का अभाव सही, पर उस दौलत की

कमी नहीं जो मानवता का आभूषण समझी जाती है।

अतीत के महान व्यक्तियों पर दृष्टि डालिए, उनमें कितने करोड़पतियों के नाम हैं ? शायद बहुत कम, क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि मनुष्य की वास्तविक महानता धन-ऐश्वर्य में निहित नहीं है। तो फिर आप धन न होने पर निराश क्यों हो ? यदि आप विद्या-भूषण से सज्जित हैं, आपका चरित्र निष्कलंक और आचरण आदर्श है, और इतना काफी कमा लेते हैं कि आपको किसी के आगे हाथ फैलाने की आवश्यकता न हो, तो आप स्वयं को कभी तुच्छ न समझें। आप मनुष्य हैं, उच्च पद रखने वाले मनुष्य ; जिस पर सारी मानवता गर्व कर सकती है।

मैं यह नहीं कहता कि आप धन-सम्पत्ति को प्राप्त करने की चेष्टा न करें, अथवा मान-प्रतिष्ठा के लिये प्रयत्नशील होने को पाप समझें, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि धन और पदैश्वर्य को इतना महत्व न दिया जाये कि उन पर सिद्धांत भी निछावर कर दिए जाएँ और उचित-अनुचित हर साधन से केवल धनोपार्जन को ही अपना लक्ष्य बना लिया जाये। और यदि इन तरीकों से भी उद्देश्य सिद्ध न हो, तो फिर किस्मत् को रोया जाए।

धन दौलत, मान-प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के लिए प्रयास करते हुए कुछ लोग उन कर्त्तव्यों की भी अवहेलना करते हैं, जो उन पर परिवार के पालन-पोषण और संतान की शिक्षा-दीक्षा के रूप में लागू होते हैं। वे धनवान बनने की अत्याधिक लालसा में बच्चों की उचित आवश्यकताओं पर भी कुछ व्यय करना पाप समझते हैं। अपने काम में इतने व्यस्त रहते हैं कि बच्चों को प्यार करने तक का अवकाश नहीं निकाल पाते। वे अपने मित्रों के भी किसी काम नहीं आते, उन्हें हर वक्त अपनी ही पड़ी रहती है, वे जागते सोते हर दम इसी

विचार में विमग्न रहते हैं कि धन कैसे प्राप्त किया जाये, अथवा उच्च पद को कैसे पहुंच जाए।

जो लोग अपने आपमें तल्लीन रहते हैं, वे निष्ठ बन्धुओं के अभाव का प्रायः रोना रोते हैं। इसका दोष वे उन लोगों को देते हैं, जिन्हें वे अपना मित्र बनाना चाहते हैं, परन्तु वास्तव में दोष उनका अपना होता है। असल में वे अत्यंत ही स्वार्थी और अहमान्य होते हैं, और चाहते हैं कि उनके मित्रगण भी केवल उन्ही की भलाई और उन्नति के लिये सोचा करें, इस अवस्था में कौन उन का मित्र बनना पसन्द करेगा। इन लोगों के दृष्टिकोण में यह त्रुटि इसलिये होती है कि वे धन और प्रसिद्धि की लालसा में सफलता के वास्तविक मर्म को नहीं समझते। उनके विचार में सफलता का अर्थ केवल धन ऐश्वर्य है। इस लिए वे उसकी प्राप्ति की चेष्टाओं में सारी दुनिया को भुला देते हैं, सबसे अलग-अलग रहते हैं, और उनकी समस्त अभिरूचियाँ केवल स्वयं तक सीमित रह जाती हैं।

जीवन के सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण स्वस्थ नहीं है। सफलता के लिये संघर्ष अवश्य कीजिये। आगे—और आगे आप का अभीष्ट लक्ष्य जरूर होना चाहिये। परन्तु सफलता की लालसा में जीवन की सामान्य खुशियों से स्वयं को वंचित न कीजिये। भाई-बन्धुओं और दुनिया को भुला न दीजिये। उनकी उपेक्षा करके सम्भव है, आप कोई पद प्राप्त कर लें, या कुछ धन एकत्रित कर लें। परन्तु इसका जो मूल्य आप चुका रहे हैं, वह इतना अधिक है कि आप कई सफलताएँ उस पर निछावर की जा सकती हैं।

इसके विपरीत यदि आप उन्नति के लिये प्रयत्न करते हुए अपने परिवार का भी ध्यान रखें, और मित्रों के प्रेम और निष्ठा का जवाब वैसे ही प्रेम और निष्ठा से दें, तो आपके यही घर वाले और मित्र आपके सबल सहायक सिद्ध होगें, और आपकी

बहुत सी कठिनाइयाँ दूर करने में आपका हाथ बटाएँगे। इस प्रकार आप सफलता के शिखर पर अपेक्षया अधिक शीघ्रता से पहुंचेंगे।

अपनी योग्यता का अनुमान लगाने में कभी भ्रम में न पड़िए कुछ लोग केवल इस लिए सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते और सफलता के दर्शन नहीं करते, कि वे मध्यम कोटि की योग्यता रखने के बावजूद स्वयं को बुद्धि और प्रतिभा की मूर्ति समझते हैं। इस भ्रम के कारण उन्हें जीवन में बहुत हानि उठानी पड़ती है। यह लोग यदि थोड़ा धैर्य से काम लें, और प्रारम्भ में छोटे व्यवसाए को भी कुशलता-पूर्वक सम्पन्न करें तो वे शीघ्र ही उच्च पद प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यह लोग अपने उतावलेपन और चंचल वृत्ति के कारण क्रमशः उन्नति करने में विश्वास नहीं रखते। वे पहले ही पग पर उच्चतम पद प्राप्त करना चाहते हैं। और जब उसे हासिल करने में सफल नहीं होते, तो क्रोध और संताप के वशिभूत होकर अपने जीवन को दुःखमय उपाय बना लेते हैं। इस विपत्ति से बचने का उत्तम उपाय यह है कि अपनी योग्यता का अनुमान लगाने मे यथार्थ-वाद से काम लिया जाये।

अपने पर विश्वास के अलावा जीवन और उसकी उपयोगिता पर विश्वास, मनुष्य मात्र के उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास और मित्रों व सहयोगियों पर विश्वास, जिनसे नित्य सम्बन्ध रहता है, सफलता के दर्शन करने तथा संतुष्ट और प्रसन्न जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक है। आत्मविश्वास का शब्दिक अर्थ यद्यपि स्वयं पर विश्वास है, परन्तु मनुष्य स्वयं पर विश्वास तभी कर सकता है, जब उसे अपने अलावा कुछ और लोगों और सहयोगियों पर भी विश्वास हो।

जीवन की लम्बी यात्रा में मनुष्य को अगणित अन्य लोगों के सहयोग की आवश्यकता होती है। पारिवारिक जीवन का सुख-संतोष इस बात पर निर्भर करता है कि घर के सब सदस्य परस्पर प्रेम करते हों, एक-दूसरे का सम्मान करते हों, और एक-दूसरे पर विश्वास करते हों। वह घर जिसके सदस्यों में पारस्परिक विश्वास नहीं होता, वह धन-धान्यपूर्ण होने पर भी जीवन के आधे सुखों से वंचित होता है।

आपको अपने पर विश्वास है। आप समझते हैं कि नौकरी की बजाये व्यापार में पूँजी लगाएँ, कपड़े की दुकान खोल लें तो आय में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। परन्तु आप इस योजना में बड़े भाई को विश्वास में नहीं लेते, बल्कि उसे परामर्श देने के योग्य ही नहीं समझते अथवा पहले ही फैसला कर लेते हैं कि वह तो ह र अवस्था में आपकी योजना का विरोध ही करेगा। इसलिए उसे सूचित किए बिना पिता से रुपया लेकर कारबार में लगाना चाहेंगे, तो उस का परिणाम क्या निकलेगा ? यही न; कि यदि पिता ने पैसा दे भी दिया, तो भाइयों में ठन जाएगी। भ्रातृ-भाव के स्थान पर शत्रुता का सूत्रपात होगा, और सम्भव है नौबत मुकदमेबाज़ी तक पहुंच जाए। दो भाइयों के मतभेद का कुप्रभाव सारे परिवार पर पड़ेगा और इस प्रकार आपका बड़े भाई पर 'अविश्वास, सारे घर के सुख-चैन का अंत करने का कारण बन जाएगा।

घर के बाद मौहल्ले को लीजिए। यदि आप पड़ोसियों पर विश्वास नहीं करेंगे, तो वे भी आपको संदेह की दृष्टि से देखेंगे। आपके अविश्वास का उत्तर अविश्वास से दिया जाएगा, जिससे अकारण ही खिंचाव पैदा होगा। और न केवल आपका जीवन कटु और कष्टपूर्ण हो जाएगा, बल्कि आपका अविश्वास दूसरों की खुशियों के लिए भी घातक सिद्ध होगा। यदि इस क्षेत्र को

कुछ और विस्तृत किया जाए, तो आप देखेंगे कि आपका रवैया सारे समाज को प्रभावित कर सकता है। जिसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि समाज आपको मुँह नहीं लगाएगा, और आपको अकेलेपन पर संतोष करना पड़ेगा। प्रकट है कि जो व्यक्ति सांसारिक गतिविधियों में भाग लेकर ऊँचा उठना चाहता है, उसे अकेलापन कितना हानिकारक हो सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह स्वभावतः मेल-जोल को पसन्द करता है। वर्तमान जनतंत्रीय युग में तो कोई व्यक्ति सफल हो ही नहीं सकता, जब तक वह दूसरों का सहयोग प्राप्त न करे। इन परिस्थितियों में दूसरों पर विश्वास करके अपने परिचय-प्रभाव के क्षेत्र को सीमित बनाने की मूर्खता वही कर सकता है, जो अपने लिए गढ़ा खोदने पर कटिबद्ध हो।

नौकरी या व्यवसाए के क्षेत्र में भी पारस्परिक विश्वास के बिना काम चल नही सकता। आप किसी व्यापारिक संस्था के व्यवस्थापक हैं, आपके अधीनस्थ कई छोटे अधिकारी और क्लर्क काम करते हैं। यदि आप उन पर विश्वास न करें, तो आप को हर छोटे अफसर और क्लर्क के काम पर हर वक्त नज़र रखनी पड़ेगी, हर चिट्ठी का स्वयं जवाब देना होगा। प्रकट है कि ये सारे काम आप अकेले नहीं कर सकते। यदि कर सकते, तो इतने बड़े कार्यालय की आवश्यकता ही क्या थी। अब यदि आप अविश्वास के कारण एक-एक खत का जवाब लिखने बैठ जाएँ, तो आपका जो असली काम है, वह तो धरा ही रह जाएगा। सारांश यह कि व्यावहारिक दुनिया में आपको दूसरों पर विश्वास करना ही पड़ता है।

कुछ लोग केवल इसलिए सफल नहीं होते कि वे अपने पर तो दूसरों का विश्वास चाहते हैं, पर स्वयं दूसरों पर विश्वास नहीं करते। उन्हें दूसरों की कोई बात, कोई सुझाव ईमानदारी

पर आधारित दिखाई नहीं देती। इस प्रकार जब वे एक दीर्घ-काल अविश्वास को अपना नियम बनाए रखते हैं, तो वे जीवन के सौन्दर्य और उपयोगिता पर भी विश्वास गँवा बैठते हैं। और अंततः स्वयं अपने आप पर संदेह करने लगते हैं। जब उन्हें प्रत्येक व्यक्ति बेईमान, स्वार्थी और अयोग्य दिखाई देता है, तो वे जीवन को ही एक धोखा और मरीचिका समझने लगते हैं। मानवी जीवन चूंकि विचारों का प्रतिबिम्ब होता है, इसलिए व्यक्ति जब चौबीसों घंटे चारों ओर छल-कपट और झूठ का साम्राज्य देखेगा, तो अंततः उसे अपने भीतर भी उसी की छाप दिखाई देगी। इस प्रकार वह न स्वयं अपने उद्देश्यों की सत्यता पर विश्वास कर सकेगा, और न उनकी पूर्ति के लिए दूसरों का सहयोग प्राप्त कर सकेगा। अब चाहे वह कितना ही योग्य और प्रतिभाशाली क्यों न हो, वे न तो अपने कारबार को उन्नत कर सकेगा, और न किसी संस्था या विभाग का कुशल व्यवस्थापक सिद्ध होगा। ऐसे व्यक्ति को पग-पग पर असफलताओं का सामना करना पड़ेगा। और यह सफलता उसके आत्म-विश्वास पर आक्रमण करेगी। वह अनुभव करने लगेगा कि जब एक संस्था का संचालन नहीं कर सकता, तो उसका अर्थ यही है कि उसकी योग्यता का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि वह कोई योजना तैयार करेगा, तो उसे विश्वास न होगा कि वह त्रुटिविहीन है। ऐसी स्थिति में उसकी योजना के सफल होने की क्या सम्भावना हो सकती है, इस प्रकार वह अविश्वास का शिकार होकर अपनी योग्यताओं के पुरस्कार से वंचित रह जाएगा।

जीवन के संगठन के लिए कुछ और नियम भी आवश्यक हैं। एक यह कि अपनी जानकारी की सदैव वृद्धि करते रहना चाहिए। समय बड़ी तेज़ी से बदल रहा है, कल की जानकारी आज पुरानी हो जाती है, कल के विचार आज की आवश्यकताओं

पर पूरे नहीं उतरते। इसलिए आपको हमेशा समय के साथ कदम मिलाकर चलना चाहिए।

इसके लिए उत्तम उपाय नई-नई पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा समाचारपत्रों का अध्ययन है, परन्तु पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन से समुचित लाभ तभी हो सकता है, जब आप उनका चुनाव बड़ी सावधानी से करें। एक पाश्चात्य विद्वान ने ठीक ही कहा है कि कुछ पुस्तकों को केवल देख लेना ही पर्याप्त होता है; कुछ पुस्तकों को एक बार पढ़ लेना चाहिए। लेकिन कुछ पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें बार-बार पढ़ने और आत्मसात करने की आवश्यकता होती है।

अंतिम शब्द

हम बड़ी चेष्टाओं के बाद इस तथ्य से अवगत हुए हैं कि आत्मविश्वास का तात्पर्य क्या है, और जीवन के निर्माण में उसका क्या महत्व है ? हमने महापुरुषों के जीवन से यह शिक्षा ग्रहण की है कि यदि अपने पर विश्वास किया जाए, तो बड़े से बड़े अभियान में सफलता प्राप्त की जा सकती है, और महान कार्य किए जा सकते हैं। हम पर यह रहस्य भी खुल चुका है कि हम मनुष्य-सचमुच महान शक्ति रखते हैं, हमें विधाता ने अक्षय विभूतियाँ प्रदान की हैं। यदि हमें उन्हें विकसित करने और उनसे काम लेने पर तैयार हो जाएँ, तो निश्चय ही सफलता के रंगमहल में प्रवेश कर सकते हैं, अपने देश और राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं, और मनुष्य मात्र की उन्नति में भाग ले सकते हैं।

हमें शायद पहली बार उन सिद्धांतों, नियमों और उपायों से परिचय प्राप्त हुआ है, जिन्हें कार्यान्वित करने से हम आत्म-विश्वासी बन सकते हैं, और वह शक्ति अपने अन्दर पैदा कर सकते हैं, जो पहाड़ों को भी रास्ता देने पर बाध्य कर देती है। अब हम उस स्थल पर पहुँच चुके हैं, जिसे जीवन-निर्माण का पहला चरण कहा जाता है। यह यात्रा यह संघर्ष हमारे लिए कितना हितकर होगा, यह निर्भर करता है इस बात पर कि हम आत्मविश्वास के महत्व और उसकी स्थापना के नियमों से परि-

चित होने के अलावा उनके प्रकाश में अपने जीवन के पुनःसंगठन के लिए तत्पर भी हैं या नहीं, तो फिर क्या यह हमारा मनुष्योचित् कर्त्तव्य नहीं है कि इस ज्ञान से जो हमें इतने उद्योग के बाद प्राप्त हुआ है, भरपूर लाभ उठाने के लिए कर्म-मार्ग पर अग्रसर हो जाएँ ?

✦✦✦

निराला

सुभाषित और सूक्तियां

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार महाकवि निराला ने साहित्य के सभी अंगों को अपनी रचनाओं से विभूषित किया है। उनका अध्ययन बड़ी ही गहन और उसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही भावपूर्ण हुई है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर बिखरे उनके विचार और सूक्तियों का संकलन इस पुस्तक के रूप में हिन्दी जगत को भेंट है। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि निराला-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक रुचेगी और इसे समुचित आदर प्राप्त होगा।

(आगामी आकर्षण)

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलां, दिल्ली।

जयशंकर प्रसाद

सुभाषित और सूक्तियां

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक

श्री ओम प्रकाश शर्मा

श्री जयशंकर प्रसाद हिन्दी भाषा के विशेष प्रतिनिधि माने जाते हैं। उन्होंने साहित्य के सभी क्षेत्रों में, यथा उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता एवं निबन्ध आदि में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है और सभी स्थलों पर उनकी गहन अनुभूति और अध्ययन की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अपने साहित्य में प्रसाद जी ने भिन्न-भिन्न पात्रों के द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्हीं विचारों और सूक्तियों का संकलन यह पुस्तक है। आशा की जा सकती है कि प्रसाद साहित्य के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

(आगामी आकर्षण)

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलां, दिल्ली।